उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

हल्द्वानी

MAJY-602

तृतीय सेमेस्टर

ज्योतिषशास्त्रीय विविध योग एवं दशाफल विचार-01

मानविकी विद्याशाखा

ज्योतिष विभाग

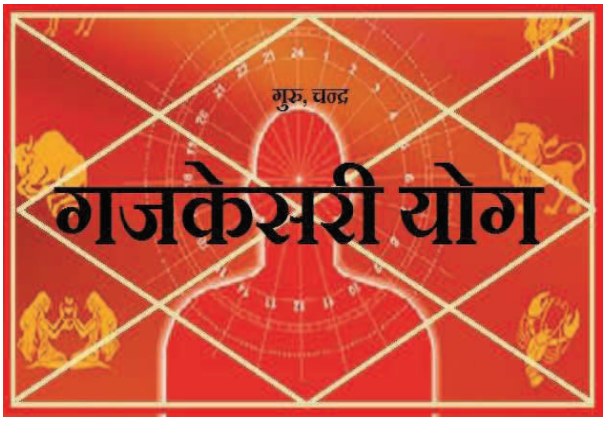

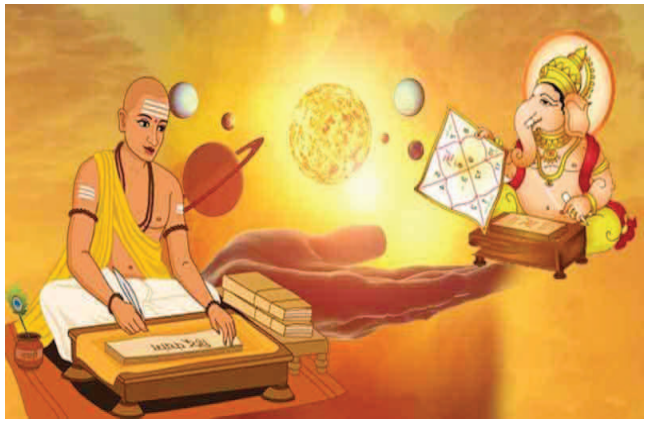

तीनपानी बाईपास रोड , ट्रॉन्सपोर्ट नगर के पीछे

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल - 263139

फोन नं – ०05946-288052

टॉल फ्री न0- 18001804025

Fax No.- 05946-264232, E-mail- info@uou.ac.in

http://uou.ac.in

अध्ययन समिति - फरवरी 2020

अध्यक्ष

कुलपति, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी

प्रोफेसर एच.पी. शुक्ल – (संयोजक)

निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी – (समन्वयक)

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

प्रोफेसर देवीप्रसाद त्रिपाठी

कुलपति, उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय

अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी।

प्रोफेसर रामराज उपाध्याय

अध्यक्ष, पौरोहित्य विभाग, श्रीलालबहादुरशास्त्री
राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

पाठ्यक्रम सम्पादन एवं संयोजन

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी

असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	खण्ड	इकाई संख्या
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**1**	**1, 2, 3, 4, 5**
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**2**	**1, 2, 3, 4, 5**

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष - 2021

प्रकाशक - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी।

मुद्रक: -

ISBN No. -

नोट : - (इस पुस्तक के समस्त इकाईयों के लेखन तथा कॉपीराइट संबंधी किसी भी मामले के लिये संबंधित इकाई लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का निस्तारण नैनीताल स्थित उच्च न्यायालय अथवा हल्द्वानी सत्रीय न्यायालय में किया जायेगा।)

एम.ए. (ज्योतिष) **तृतीय सेमेस्टर** **MAJY-602**

ज्योतिषशास्त्रीय विविध योग एवं दशाफल विचार-01

अनुक्रम

प्रथम खण्ड – विविध योग विचार	**पृष्ठ- 2**
इकाई 1: नाभस योग विचार	3-18
इकाई 2: राज योग	19-36
इकाई 3: चन्द्रादि योग	37-52
इकाई 4: दारिद्रय योग	53-63
इकाई 5 : मारक योग	64-75
द्वितीय खण्ड - दशा साधन	**पृष्ठ-76**
इकाई 1: विंशोत्तरी दशा साधन	77-88
इकाई 2: अष्टोत्तरी दशा साधन	89-105
इकाई 3: योगिनी दशा साधन	106-116
इकाई 4: अन्तर्दशा एवं प्रत्यन्तर्दशा	117-124
इकाई 5: सूक्ष्म दशा व प्राण दशा	125-132

एम.ए. (ज्योतिष)

(MAJY-20)

तृतीय सेमेस्टर

द्वितीय पत्र

ज्योतिषशास्त्रीय विविध योग एवं दशाफल विचार - 01

MAJY- 602

खण्ड - 1

विविध योग विचार

इकाई – 1 नाभस योग विचार

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 नाभस योग परिचय
1.3.1 नाभस योग लक्षण
1.3.2 नाभस योगों का फल
1.4 सारांश
1.5 पारिभाषिक शब्दावली
1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.8 सहायक पाठ्यसामग्री
1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई तृतीय सेमेस्टर (MAJY-602) की प्रथम खण्ड की पहली इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है– नाभस योग विचार। इससे पूर्व आपने फलित ज्योतिष से जुड़े विभिन्न विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में 'नाभस योग' के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

नाभस योग का सम्बन्ध ज्योतिष शास्त्र के फलित स्कन्ध से है। फलित ज्योतिष में 32 प्रकार के नाभस योगों का भेद प्राप्त होता है तथा इनके 1800 प्रभेद हैं। प्राय: फलित के लगभग समस्त ग्रन्थों में आचार्यों द्वारा 'नाभसयोगाध्याय' का वर्णन किया गया है।

आइए इस इकाई में हम लोग अब 'नाभस योगों' के बारे में विस्तार से अध्ययन करते है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- नाभस योग को परिभाषित कर सकेंगे।
- नाभस योगों के प्रकार को समझा सकेंगे।
- 32 प्रकार के नाभस योगों को जान जायेंगे।
- नाभस योग के महत्व को प्रतिपादित कर सकेंगे।
- फलित ज्योतिष में नाभस योग की भूमिका को जान लेंगे।

1.3 नाभस योग परिचय

ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्त्तक महर्षि पराशर द्वारा लिखित 'वृहत्पराशरहोराशास्त्र' नामक ग्रन्थ के नाभसयोगाध्याय में वर्णन करते हुए लिखा गया है कि नाभस योग के ३२ भेद एवं १८०० प्रभेद हैं। उन ३२ भेदों में से ३ आश्रय योग हैं, २ दल योग हैं, २० आकृति योग हैं तथा ७ संख्या योग कहे गये हैं। इस प्रकार नाभस योग को आश्रय, दल, आकृति एवं संख्या योगों में वर्गीकृत किया गया है। मूल श्लोक इस प्रकार है –

अधुना नाभसा योगा: कथ्यन्ते द्विजसत्तम्।
द्वात्रिंशत् तत्प्रभेदास्तु शतघ्नाष्टादशोन्मिता:।।
आश्रयाख्यास्त्रयो योगा दलसंज्ञं द्वयं तत:।
आकृतिर्विंशति: संख्या: सप्त योगा: प्रकीर्तिता:।। (श्लोक संख्या -१,२)

यहाँ द्वात्रिंशत् का अर्थ ३२ है। शतघ्नाष्टादश का अर्थ १८०० है। आश्रयाख्यास्त्रयो का अर्थ तीन

प्रकार का आश्रय योग, दलसंज्ञं द्वयं का अर्थ २ दलयोग, आकृतिर्विंशति: का अर्थ २० प्रकार के आकृति योग तथा संख्या: सप्त योगा: का अर्थ ७ प्रकार के संख्या योग है।

नाभस योगों के नाम –

रज्जुश्च मुसलश्चैव नलश्चेत्याश्रयास्त्रय:।
मालाख्य: सर्पसंज्ञश्च दलयोगौ प्रकीर्तितौ।।
गदाख्य: शकटाख्यश्च श्रृगांटक विहंगमौ।
हल वज्र यवाश्चैव कमलं वापियूपकौ।।
शर-शक्ति-दण्ड-नौका-कूट-च्छत्र-धनूंषि च।
अर्धचन्द्रस्तु चक्रं च समुद्रश्चेति विंशति:।।
संख्याख्या वल्लकी-दाम-पाश-केदार-शूलका:।
युगो गोलश्च सप्तैते युक्ता दन्तमिता द्विज।। (श्लोक संख्या ३-६)

अर्थात् नाभस के ३२ भेदों में से रज्जु, मुसल तथा नल ये ३ आश्रय योग हैं। माला एवं सर्प –ये दो दलयोग कहे गये हैं। गदा, शकट, श्रृंगाटक, विहंगम (पक्षी), हल, वज्र, यव, कमल, वापी, यूप, शर, शक्ति, दण्ड, नौका, कूट, छत्र, चाप, अर्धचन्द्र, चक्र एवं समुद्र- ये २० आकृतियोग कहे गये हैं। बल्लकी, दाम, पाश, केदार, शूल, युग और गोल – ये ७ संख्यायोग कहे गये हैं। इस प्रकार ये सभी नाभस योग कहलाते हैं।

स्पष्टार्थ चक्र

संज्ञा	**योगों का नाम**
आश्रय	रज्जु, मुसल तथा नल
दल	माला एवं सर्प
आकृति	गदा, शकट, श्रृंगाटक, विहंगम (पक्षी), हल, वज्र, यव, कमल, वापी, यूप, शर, शक्ति, दण्ड, नौका, कूट, छत्र, चाप, अर्धचन्द्र, चक्र एवं समुद्र
संख्या	बल्लकी, दाम, पाश, केदार, शूल, युग और गोल

1.3.1 नाभस योगों के लक्षण

आश्रय योग के लक्षण –

सर्वैश्चरे स्थितै रज्जु: स्थिरस्थैर्मुसल: स्मृत:।

नलाख्यो द्विस्वभावस्थैराश्रयाख्या इमे स्मृता:।। (श्लोक संख्या -७)

यदि समस्त ग्रह चर (१,४,७,१०) राशि में स्थित हों तो '**रज्जु**' नामक योग होता है। सभी ग्रह यदि स्थिर (२,५,८,११) राशि में स्थित हों तो '**मुसल**' नामक योग होता है और सभी ग्रह द्विस्वभाव (३,६,९,१२) राशि में हों तो '**नल**' नामक योग होता है। **ये सभी चरादि राशियों के आश्रित होने के कारण आश्रय योग कहलाते हैं।** इन सभी योगों को आप कुण्डली में आप इस प्रकार भी समझ सकते हैं –

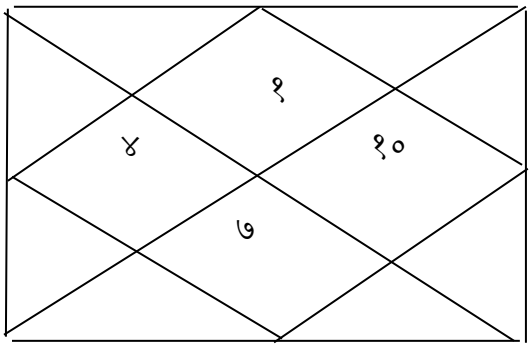

यदि समस्त सूर्यादि ग्रह कुण्डली के उक्त दिए गए चार स्थान में हो तो **रज्जु** नामक योग बनेगा।

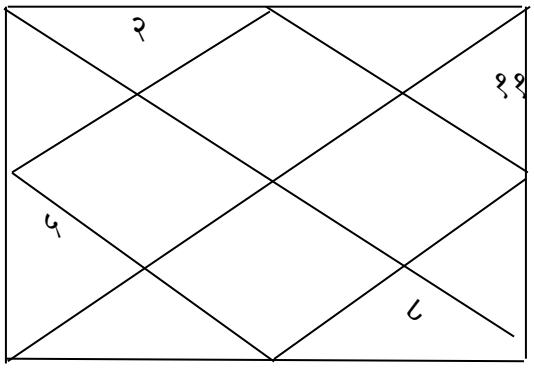

यदि सूर्यादि समस्त ग्रह कुण्डली के उक्त दिए गए चार स्थान में हो तो **मुसल** नामक योग बनेगा।

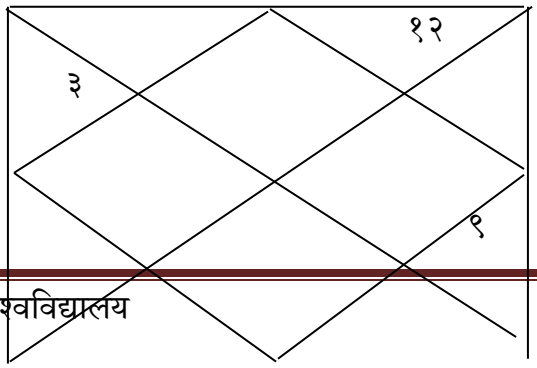

६

यदि सूर्यादि समस्त ग्रह कुण्डली के उक्त चार स्थान में हो तो **नल** नामक योग बनेगा।

दलयोग के लक्षण –

केन्द्रत्रयगतै: सोम्यै: पापैर्वा दलसंज्ञकौ।
क्रमान्मालाभुजंगाख्यौ शुभाऽशुभफलप्रदौ।। (श्लोक संख्या -८)

अर्थात् तीन केन्द्र में सभी शुभ ग्रह हों या तीन केन्द्र में समस्त पापग्रह हों तो क्रम से वे माला एवं सर्प योगनामक दलयोग कहलाते हैं। ये योग शुभ और अशुभ फलदायक होते हैं। तीन केन्द्र से तात्पर्य यहाँ १,४,७,१० स्थानों में से किसी तीन में है।

विशेष - केन्द्रेष्वपापेषु सितज्ञजीवै: केन्द्रत्रिसंस्थै: कथयन्ति मालाम्।
सर्पस्त्वसौम्यैश्च यमारसूर्यैर्योगाविमौ द्वौ कथितौ दलाख्यौ।।

इसके अनुसार बुध, गुरु, शुक्र – ये तीनों यदि तीन केन्द्र (१,४,७,१० में से किसी तीन में) हों तथा पापग्रह केन्द्र से अन्यत्र हो तभी माला योग होता है। इसी प्रकार रवि, शनि तथा भौम ये ३ केन्द्र में हों और शुभ ग्रह केन्द्र से अन्य स्थानों में हो तभी सर्पयोग कहलाता है।

आकृति योगों के लक्षण –

आसन्नकेन्द्रद्वयगै: सर्वैर्योगो गदाह्वय:।
शकटं लग्नजायास्थै: खाम्बुगैर्विहग: स्मृत:।।
योग: श्रृंगाटकं नाम लग्नात्मजतप:स्थितै:।
अन्यस्थानात् त्रिकोणस्थै: सर्वैर्योगो हलाभिध:।।
लग्नजायास्थितै: सौम्यै: पापाख्यै: खाम्बुसंस्थितै:।
योगो वज्राभिध: प्रोक्त: विपरीतस्थितैर्यव:।। (श्लोक संख्या – ९-११)

समीपस्थ दो केन्द्र में सभी ग्रह बैठे हों तो **गदा** नामक योग होता है। लग्न तथा सप्तम में समस्त ग्रह हों तो **शकट** नामक योग होता है। चतुर्थ तथा दशम स्थान में सभी ग्रह स्थित हों तो **विहग** (पक्षी) नामक योग होता है। यदि लग्न से त्रिकोण (१,५,९) स्थान में सभी ग्रह बैठे हों तो **श्रृंगाटक** योग होता है। लग्न से भिन्न स्थान से त्रिकोण (२,६,१० अथवा ३,७,११ वाँ इस प्रकार से किसी तीन स्थान) में सभी ग्रह स्थित हों तो **हल** नामक योग होता है। लग्न, सप्तम में सभी शुभ ग्रह बैठे हों एवं चतुर्थ दशम में सभी पापग्रह बैठे हों तो **वज्र** नामक योग होता है। विपरीत होकर बैठे हों तो **यव** नामक योग होता है।

कमल तथा वापी योग के लक्षण –

सर्वकेन्द्रगतै: सर्वैर्मिश्रै: कमलसंज्ञक:।
केन्द्रादन्यत्रगै: सर्वैर्योगो वापीसमाह्वय:।। (श्लोक संख्या -१२)

अर्थात् समस्त ग्रह केन्द्र (१,४,७,१०) में ही स्थित हों तो **कमल** नामक योग होता है। यदि सभी ग्रह केन्द्र से भिन्न स्थानों (पणफर तथा आपोक्लिम) में ही बैठे हों तो **वापी** नामक योग होता है।

यूप, शर, शक्ति और दण्डयोगों के लक्षण –

यूपो लग्नाच्चतुर्भस्थै: शरस्तुर्याच्चतुर्भगै:।
शक्तिर्मदाच्चतुर्भस्थैर्दण्डो मध्याच्चतुर्भगै:।।

लग्न से क्रमश: ४ स्थानों में सभी ग्रह स्थित हों तो **यूप** नामक योग होता है। चतुर्थ से ४ स्थान में सभी ग्रह बैठे हों तो **शर** और सप्तम से ४ स्थान में सभी ग्रह हों तो **शक्ति** नामक योग होता है। दशम स्थान से ४ स्थान में सभी ग्रह हों तो **दण्ड** नामक योग होता है।

नौका-कूट-छत्र और चाप योगों के लक्षण –

लग्नात् सप्तमगैर्नौका कूटस्तुर्याच्च सप्तमै:।
छत्राख्य: सप्तमादेवं चापं मध्याद् भसप्तगै:।।

लग्न से लगातार ७ सात स्थान में सभी ग्रह हों तो **नौका** नामक योग होता है। चतुर्थ स्थान से सात स्थान में सभी ग्रह स्थित हों तो **कूट** नामक योग होता है। सप्तम स्थान से सात स्थानों में सभी ग्रह स्थित हों तो **छत्र** नामक योग होता है। इसी प्रकार दशम स्थान से सात स्थानों में सभी ग्रह बैठे हों तो **चाप** नामक योग होता है।

चक्र एवं समुद्रयोग के लक्षण –

लग्नादेकान्तरस्थैश्च षड्भगैश्चक्रमुच्यते।
धनादेकान्तरस्थैस्तु समुद्र: षड्गृहाश्रितै:।।

लग्न से प्रारम्भ कर एकान्तर से ६ स्थानों अर्थात् (१,३,५, ७, ९,११) में सभी ग्रह स्थित हों तो **चक्र** नामक योग होता है। इसी प्रकार धन (द्वितीय) भाव से एकान्तर स्थानों अर्थात् (२,४,६,८,१०,१२) में सभी ग्रह विद्यमान हों तो **समुद्र** नामक योग होता है। ये २० योग अपनी-अपनी आकृति के अनुरूप होने के कारण **आकृति** योग कहे गये हैं।

सात संख्यक योगों के लक्षण –

एकराशिस्थितैर्गोलो युगाख्यो द्विभसंस्थितै:।
शूलस्तु त्रिभगै: प्रोक्त: केदारस्तु चतुर्भगै:।।

पंचराशिस्थितै: पाशो दामाख्य: षड्गृहाश्रितै:।

वीणा सप्तभगै: सर्वैर्विहान्यानुदीरितान्।।

अर्थात् सभी ग्रह एक राशि में स्थित हों तो **गोलयोग**, २ राशि में सभी ग्रह हों तो **युग योग**, ३ राशि में समस्त ग्रह के रहने पर **शूलयोग,** ४ राशि में सभी ग्रह स्थित हों तो **केदारयोग,** ५ राशि में सभी ग्रह हों तो **पाशयोग,** ६ राशि में सभी ग्रह रहने पर **दामयोग** और ७ राशि में सभी हों तो **वीणा** नामक योग होता है। इससे पूर्व कथित योग के लक्षण न हों तभी इन योगों को जानना चाहिए। यदि पूर्वोक्त लक्षण हों तो पूर्वकथित योग ही जानना चाहिए।

बोध प्रश्न –

1. नाभस योग के भेदों की संख्या कितनी है।

   क. ३४ ख.३२ ग.३६ घ. ३८

2. वृहत्पराशरहोराशास्त्र ग्रन्थ के अनुसार नाभस योग के प्रभेदों की संख्या कितनी है।

   क. ३२ ख. ३८ ग.१८०० घ.१६००

3. आकृति योगों की संख्या है –

   क. ३ ख.२ ग.५ घ. २०

4. सभी ग्रह एक राशि में स्थित हों तो कौन सा योग बनता है।

   क. युग योग ख. गोल योग ग. शूल योग घ. वीणा योग

5. लग्न से लगातार ७ सात स्थान में सभी ग्रह हों तो योग होता है-

   क. नौका योग ख. छत्र योग ग. चामर योग घ. शूल योग

6. समस्त ग्रह केन्द्र (१,४,७,१०) में ही स्थित हों तो कौन सा योग होता है।

   क. कमल योग ख. छत्र योग ग. चामर योग घ. युग योग

7. सभी ग्रह यदि स्थिर (२,५,८,११) राशि में स्थित हों तो योग होता है –

   क. मुसल योग ख. कमल योग ग. छत्र योग घ. वीणा योग

1.3.2 ३२ नाभस योगों के शुभाशुभ फल –

रज्जु – अटनप्रिया: सुरूपा: परदेशस्वास्थ्यभागिनो मनुजा:।

क्रूरा: खलस्वभावा रज्जुप्रभवा: सदा कथिता:।।

मुसल - मानज्ञानधनाद्यैर्युक्ता भूपप्रिया: ख्याता:।

बहुपुत्रा: स्थिरचित्ता मुसलमुत्था भवन्ति नरा:।।

नल - न्यूनातिरिक्तदेहा धनसंचयभागिनोऽतिनिपुणाश्च।
बन्धुहिताश्च सुरूपा नलयोगे सम्प्रसूयन्ते।।

रज्जु योग में उत्पन्न जातक भ्रमणप्रिय, सुन्दर रूप वाला, परदेश में जाने से स्वास्थ्य लाभ करने वाला, क्रोधी और दुष्ट स्वभाव वाला होता है। मुसल योग में उत्पन्न पुरूष मानी, ज्ञानी, धनादि से युक्त, राजमान्य, विख्यात, अधिक पुत्र वाला और स्थिर स्वभाव वाला होता है। नल योग में समुत्पन्न जातक कम या अधिक देह वाला, धन संग्रह करने वाला, अत्यन्त चतुर, बन्धुओं का प्रिय और सुन्दर रूप वाला होता है।

माला – नित्यं सुखप्रधाना वाहनवस्त्रान्नभोगसम्पन्ना:।
कान्ता: सुबहुस्त्रीका मालायां सम्प्रसूता: स्यु:।।

सर्प - विषमा: क्रूरा नि:स्वानित्यं दु:खार्दिता: सुदीनाश्च।
परभक्षपाननिरता: सर्पप्रभवा भविन्त नरा:।।

माला योग में उत्पन्न जातक नित्य सुख भोगने वाला, वाहन, वस्त्र, अन्नादि के भोग से सम्पन्न, सुन्दर और अधिक पत्नी वाला होता है। सर्प योग में उत्पन्न जातक विषम प्रकृति वाला, क्रूर, धनहीन, नित्यदु:खी, दीन और दूसरों से अन्न मांगकर खाने वाला होता है।

गदा - सततोद्युक्तार्थवशा यज्वान: शास्त्रगेयकुशलाश्च।
धनकनकरत्नसम्पत्संयुक्ता मानवा गदायां तु।।

शकट - रोगार्ता: कुनखा मूर्खा: शकटानुजीविनो नि:स्वा।
मित्रस्वजनविहीना: शकटे जाता भवन्ति नरा:।।

पक्षी - भ्रमणरूचयो विकृष्टा दूता: सुरतानुजीविना धृष्टा:।
कलहप्रियाश्च नित्यं विहगे योगे सदा जाता:।।

श्रृंगाटक - प्रियकलहा: समरसहा: सुखिनो नृपते: प्रिया: शुभकलत्रा:।
आढया युवतिद्वेष्या: श्रृंगाटकसम्भवा मनुजा:।।

गदा योग में उत्पन्न जातक सदैव धनोपार्जन में रत, यज्ञकारक, शास्त्र एवं संगीत में दक्ष, धन, सुवर्ण एवं रत्नादि धातुओं से युक्त होता है। शकट योग में उत्पन्न जातक रोग से पीड़ित, कुनखी, मूर्ख, गाड़ी से जीविका संचालन करने वाला, निर्धन एवं मित्रादि स्वजनों से हीन होता है। पक्षी रोग में उत्पन्न जातक भ्रमणकारी, परतन्त्र, दूत, सुरत से प्राप्त जीविका वाला, ढीठ तथा कलहप्रिय होता है। श्रृंग योग में समुत्पन्न जातक कलहकारक, युद्धकारक, सुखी, राजा का प्रिय, मनोहर पत्नी वाला, धनी और स्त्री का द्वेषी होता है।

हल - बह्वाशिनो दरिद्रा: कृषीबला दु:खिताश्च सोद्वेगा:।
बन्धुसुहृद्भि: शक्ता: प्रेष्या हलसंज्ञके सदा पुरुषा:।।

वज्र – आद्यन्तवय: सुखिन: नरा: सुभगा निरीहाश्च।
भाग्यविहीना वज्रे जाता: खला विरूद्धाश्च।।

यव - व्रतनियममंगलपरा वयसो मध्ये सुखार्थपुत्रयुता:।
दातार: स्थिरचित्ता यवयोगभवा: सदा पुरुषा:।।

कमल- विभवगणाढया: पुरुषा: स्थिरायुषो विपुलकीर्तय: शुद्धा:।
शुभशतका: पृथ्वीशा: कमलभवा मानवा नित्यम्।।

वापी - निधिकरणे निपुणधिय: स्थिरार्थसुखसंयुत: सुतयुताश्च।
नयनसुखसम्प्रहृष्टा वापीयोगेन राजान:।।

यूप - आत्मविदिज्यानिरत: स्त्रिया युत: सत्वसम्पन्न:।
व्रतनियमरतमनुष्यो यूपे जातो विशिष्टश्च।।

शर - इषुकारा: बन्धनपा: मृगयाधनसेविताश्च मांसादा:।
हिंस्रा: कुशिल्पकारा: शरयोगे मानवा: प्रसूयन्ते।।

शक्ति - धनरहितविफलदु:खितनीचालसाश्चिरायुष: पुरुषा:।
संग्रामबुद्धिनिपुणा: शक्त्यां जाता: स्थिरा: शुभगा:।।

दण्ड - हतपुत्रदारनि:स्वा: सर्वत्र च निर्घृणा: स्वजनबाह्या:।
दु:खितनीचप्रेष्या दण्डप्रभवा भवन्ति नरा:।।

अर्थात् **हल** योग में उत्पन्न जातक अधिक भोजन करने वाला, दरिद्र, कृषक, दु:खी, चिन्ताकुल, मित्र एवं बन्धुओं से युत और नौकर होता है। **वज्र** योग में उत्पन्न जातक बाल्य तथा वृद्धावस्था में सुखी, शूर, सुन्दर, नि:स्पृह, भाग्यहीन, दुष्ट एवं दूसरों से वैरभाव करने वाला होता है। **यव** योग में उत्पन्न जातक व्रत, नियम एवं अन्य मंगल कृत्य में रत, मध्यमावस्था में सुखी, धन, पुत्रों से युक्त, दानी तथा स्थिर चित्तवाला होता है। **कमल** योग में उत्पन्न जातक धनी, गुणों से युक्त, दीर्घायु, विख्यात कीर्ति वाला, शुद्ध, सैकड़ों शुभ कार्य करने वाला एवं राजी होता है। **वापी** योग में उत्पन्न पुरुष धनसंग्रह करने में निपुण, स्थिर धन एवं सुखों से युक्त, पुत्रों से युक्त, नाटक-नृत्यादि को देखने में सुखी और राजा होता है। **यूप** योग में समुत्पन्न जातक आत्मा का ज्ञाता, यज्ञकर्ता, स्त्री से युक्त, बलवान, व्रत-नियम में रत रहने वाला और विशिष्ट पुरुष होता है। **शर** योग में उत्पन्न जातक बाण बनाने वाला, कारागार का स्वामी, शिकार के माध्यम से धन प्राप्त करने वाला, मांसभक्षी, हिंसक

और कुकर्म करने वाला होता है। **शक्ति** योग में समुत्पन्न मनुष्य अर्थहीन एवं फलहीन जीवन वाला, दु:खी, नीच, आलसी, दीर्घायु, युद्धकारक, स्थिर चित्त वाला एवं सुन्दर होता है। **दण्ड** योग में उत्पन्न जातक, पुत्र, स्त्री और धन से वंचित, निर्दयी, स्वजनों से परित्यक्त, दु:खी, नीच और नौकर होता है।

नौका योग –

सलिलोपजीविविभवा: बह्वाशा: ख्यातकीर्तयो दुष्टा:।
कृपणा मलिना लुब्धा नौसंजाता: खला: पुरुषा:।।

कूट योग –

अनृतकथनबन्धपा निष्किञ्चना: शठा: क्रूरा:।
कूटसमुत्था नित्यं भवन्ति गिरिदुर्गवासिनो मनुजा:।।

छत्र योग – स्वजनाश्रयो दयावान्नानानृपवल्लभ: प्रकृष्टमति:।
प्रथमेऽन्त्ये वयसि नर: सुखवान् दीर्घायुरातपत्री स्यात्।।

चाप योग - आनृतिकगुप्तपालाश्चौरा: कितवाश्च कानने निरता:।
कार्मुकयोगे जाता भाग्यविहीना: शुभा वयोमध्ये।।

अर्धचन्द्र योग - सेनापतय: सर्वे कान्तशरीरा नृपप्रिया बलिन:।
मणिकनकभूषणायुता भवन्ति योगेऽर्धचन्द्राख्ये।।

चक्र योग – प्रणताऽऽशेषनराधिप किरीटरत्नप्रभा स्फुरितपाद:।
भवति नरेन्द्रो मनुजश्चक्रे यो जायते योगे।।

समुद्र योग - बहुरत्नधनसमृद्धा भोगयुता धनजनप्रिया: ससुता:।
उदधिसमुत्था: पुरुषा: स्थिरविभवा: साधुशीलाश्च।।

अर्थात् नौका योग में उत्पन्न जातक जलोत्पन्न (मोती, शंख आदि) वस्तुओं से जीविका चलाने वाला, धनी, महत्वाकांक्षी, विख्यात कीर्ति वाला, दुष्ट कंजूस, मलिन और लोभी होता है।

कूट योग में उत्पन्न मनुष्य मिथ्यावादी, जेल का अधिकारी, दरिद्र, शठ, क्रूर, कूटज्ञ तथा पर्वत या दुर्ग में रहने वाला होता है। छत्र योग में उत्पन्न मुनष्य अपने जनों का आश्रित, दयालु, अनेक राजाओं का मान्य, उत्तम बुद्धि से युक्त, प्रथम तथा अन्तिमावस्था में सुखी, दीर्घायु तथा आतपत्री होता है। चाप योग में उत्पन्न मनुष्य मिथ्यावादी, गुह्यपाल (जेलर), चोर, धूर्त, जंगलचारी, भाग्यरहित एवं मध्य अवस्था में सुखी होता है। अर्धचन्द्र योग में समुत्पन्न मनुष्य सेनापति, सुन्दर शरीर, राजा का प्रिय, बलवान एवं मणि–सुवर्णादि भूषणों से युक्त होता है। चक्र योग में उत्पन्न जातक अशेष (सम्पूर्ण) राजाओं से वन्दित हैं चरण जिनके, ऐसा चक्रवर्ती राजा होता है। समुद्र योग में उत्पन्न मनुष्य

समधिक रत्नादि से परिपूर्ण, भोगवान, जनों का प्रिय, पुत्रयुक्त, स्थिर सम्पत्ति वाला और सुन्दर शील वाला होता है।

वीणा योग – प्रियगीतनृत्यवाद्या निपुणा: सुखिनश्च धनवन्त:।
नेतारो बहुभृत्या वीणायां कीर्तिता: पुरुषा:।।

दाम योग - दाम्नि सुजनोपकारी नयधनयुक्तो महेश्वर: ख्यात:।
बहुसुतरत्नसमृद्धो धीरो जायेत विद्वांश्च।।

पाश योग - पाशे बन्धनभाज: कार्ये दक्षा: प्रपंचकाराश्च।
बहुभाषिणो विशीला बहुभृत्या: सम्प्रतानाश्च।।

केदार योग - सुबहूनामुपयोज्या: कृषीबला: सत्यवादिन: सुखिन:।
केदारे सम्भूताश्चलस्वभावा धनैर्युक्ता:।।

शूल योग - तीक्ष्णालसधनहीना हिंस्रा: सुबहिष्कृता महाशूरा:।
संग्रामे लब्धयशा शूले योगे भवन्ति नरा:।।

युग योग - पाखण्डवादिनो वा धनरहिता वा बहिष्कृता लोके।
सुतमातृधर्मरहिता युगयोगे ये नरा जाता:।।

गोल योग - बलसंयुक्ता विधना विद्याविज्ञानवर्जिता मलिना:।
नित्यं दु:खितदीना गोले योगे भवन्ति नरा:।।
सर्वास्वपि दशास्वेते भवेयु: फलदायिन:।
प्राणिनामिति विज्ञेया: प्रवदन्ति तवाग्रजा:।।

इस प्रकार **वीणा योग** में उत्पन्न मनुष्य गाने तथा नाचने में एवं बजाने में प्रेम रखने वाला तथा निपुण, सुखी, धनी, नेता और अधिक नौकर वाला होता है। **दाम योग** में उत्पन्न मनुष्य दूसरे का कल्याण करने वाला, नीति के द्वारा धनोपार्जन करने वाला, अधिक ऐश्वर्यवान, विख्यात, पुत्ररत्नादि से युक्त, धीर तथा विद्वान होता है। **पाश योग** में उत्पन्न जातक कारागार का भागी, कार्य में दक्ष, प्रपंची, अधिक वक्ता, शीलरहित, अधिक नौकरवाला और अधिक परिजन वाला होता है। **केदार योग** में उत्पन्न सभी का उपकार करने वाला कृषि कार्यकारक, सत्य बोलने वाला, सुखी, चंचल स्वभाव वाला और धनवान होता है। शूल योग में उत्पन्न जातक तीक्ष्ण स्वभाव वाला, आलसी, धनहीन, हिंसक, समाज से बहिष्कृत, अत्यन्त वीर एवं युद्ध में यश प्राप्त करने वाला होता है। युग योग में उत्पन्न जातक पाखण्डी, धनहीन, समाज से बहिष्कृत एवं पुत्र, माता, पिता तथा धर्म से हीन

होता है। गोल योग में उत्पन्न जातक बलवान, धनहीन, विद्या तथा विज्ञान से हीन, मलिन, सदैव दु:खी एवं दीन होता है।

उक्त फल तत् तत् ग्रहों की दशा में प्राणियों को प्राप्त होता है, ऐसा ऋषियों का वचन हैं।

आचार्य वैद्यनाथ कृत जातकपारिजात ग्रन्थ के अनुसार भी नाभसयोग पूर्वोक्तानुसार मुख्यत: चार प्रकार के होते हैं – 1. आकृति योग 2. आश्रययोग 3. दलयोग और 4. संख्यायोग। आकृतियोग के यूप, इषु आदि २० भेद होते है। आश्रय योग के रज्जु, मुसल और नल तीन भेद, दल योग के स्रक् और सर्प- दो भेद तथा संख्यायोग के वीणा, वरदाम आदि – सात भेद होते हैं। इस प्रकार नाभस योग के कुल बत्तीस (32) भेद होते हैं।

जातकपारिजात ग्रन्थ में कथित नाभसयोग का मूल श्लोक –

यूपेषुशक्तियवदण्डगदासमुद्र-
च्छत्रार्द्धचन्द्रशकटाम्बुजपक्षियोगा:।
नौचक्रवज्रहलकार्मुककूटवापी
श्रृंगाटकाश्च विविधाकृतिविंशति: स्यु:।।
रज्जुर्नलश्च मुसलस्त्रितयाश्रयाख्या:
स्रग्भोगिनौ तु दलयोगभवौ भवेताम्।
वीणादयश्च कथिता वरदामपाश
केदारशूलयुगगोलकसप्तसंख्या:।।

अर्थात् यूप, इषु, शक्ति, यव, दण्ड, गदा, समुद्र, छत्र, अर्धचन्द्र, शकट, अम्बुज, पक्षि, नौका, चक्र, वज्र, हल, कार्मुक, कूट, वापी और २० श्रृंगाटक ये बीस योग आकृति योग नाम से जाने जाते हैं। रज्जु , मुसल और नल – ये आश्रय योग के नाम से प्रसिद्ध है। स्रक और भोगिन ये दल योग है तथा वीणा, वरदाम, पाश, केदार, शूल, युग और गोलक इन सात योगों को संख्या योग कहते हैं। नाभसयोगों की संख्या के सम्बन्ध में वराहमिहिर का निम्न वचन द्रष्टव्य है –

नवदिग्वसवस्त्रिकाग्निवेदैर्गुणिता द्वित्रिविकल्पजा: स्यु:।
यवनास्त्रिगुणा हि षट्शती सा कथिता विस्तरतोऽत्र सत्समासत:।।

योगों में परस्पर समानता

योगा व्रजन्त्याश्रयजा: समत्वं यावाब्जवज्राण्डगोलकाद्यै:।
केन्द्रोपगै: प्रोक्तफलौ दलाख्यावित्याहुरन्ये न पृथक् फलौ तौ।।

अर्थात् आश्रय योग का फल यव, कमल, वज्र, पक्षि, गोलक, केदार और शूल योगों के समान तथा दलयोगद्वय का फल केन्द्रस्थ ग्रहों के समान होने से इनके फल अलग से नहीं कहा है।

नाभस योगों की संख्या विवेचन –

प्रथम नाभस योगों के आकृति- संख्या- आश्रय और दल ये ४भेद होते हैं। इनमें आकृतियोग के २०, संख्यायोग के ७, आश्रययोग के ३ और दलयोग के २ भेद होते हैं।

उक्त चारों भेदों में से आकृतियोग अकेला होने के कारण २० ही प्रकार का रहता है। परन्तु और अन्य दो-दो, तीन-तीन, चार-चार अर्थात् आकृति-संख्या, आकृति-संख्या-आश्रय और आकृति-संख्या-आश्रय-दल ये आपस में बदलने के कारण, ९,१०,८ को क्रम से ३,३ तथा ४ से गुणने पर जितने अंक हों उतने भेद होते हैं।

अर्थात् आकृति और संख्या के आपस में बदलने से ९× ३ = २७, आकृति-संख्या-आश्रय इनके आपस में बदलने से १० × ३ =३० और आकृति –संख्या-आश्रय-दल इनके आपस में बदलने से ८×४ = ३२ भेद होते हैं। वृहज्जातकम् में वराहमिहिर ने इन्हें संक्षेप में कहा है जबकि यवनों ने इनके विस्तारपूर्वक १८०० भेद कहे हैं।

यवन मत से आकृति योग के २३ भेद और संख्यादि ती योगों के आपस में बदलने से १२७ भेद ये दोनों भेद मिलकर १५० हुए। यही सब बारह राशियों के बदलने से १८०० हो जाते हैं। जैसे –

एक ही लग्न में सातों ग्रहों के बदलाव से भेद संख्या -	७
दो-दो ग्रहों के बदलाव से भेद संख्या -	२१
तीन-तीन ग्रहों के बदलाव से भेद संख्या -	३५
चार-चार ग्रहों के बदलाव से भेद संख्या -	३५
पाँच-पाँच ग्रहों के बदलाव से भेद संख्या -	२१
छ:-छ: ग्रहों के बदलाव से भेद संख्या -	७
सातों ग्रहों के बदलाव से भेद संख्या -	१
कुल योग =	१२७

आकृति योग यवनाचार्यों के मत से २३ = १५०

अब एक लग्न में १५० तो १२ लग्नों में क्या होगा?

१५० × १२ = १८०० भेद हुए।

कल्याणवर्मा कृत् सारावली में यवनादि आचार्यों द्वारा कथित १८०० प्रकार के नाभस योगों का वर्णन पूर्वोक्त के अनुसार ही है। वहाँ ३२ प्रकार के नाभस योगों का मूल श्लोक इस प्रकार है-

नौच्छत्रकूटकार्मुकशृंगाटक्वज्रदामनीपाशा:।
वीणासरोजमुसला वापीहलशरसमुद्रचक्राणि।।
माला सार्पार्धेन्दु यवकेदारौ गदाविहगयूपा:।
युगशकटशूलदण्डा रज्जु: शक्तिस्तथा नलो गोल:।।
सचराचरस्य जगतो योगैरेभि: प्रकीर्त्यते प्रसव:।
आश्रयजातान् प्राहुर्माणित्था मुसलरज्जुनलयोगान्।।

पूर्वोक्त ग्रन्थानुसार ही इस श्लोक में भी नाभस योगों का नाम बतलाया है। इसी प्रकार मन्त्रेश्वर कृत् फलदीपिका नामक ग्रन्थ में भी नाभस योगों का उल्लेख मिलता है, जो लगभग पूर्व के अनुसार ही है।

1.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्त्तक महर्षि पराशर द्वारा लिखित 'वृहत्पराशरहोराशास्त्र' नामक ग्रन्थ के नाभसयोगाध्याय में वर्णन करते हुए लिखा गया है कि नाभस योग के ३२ भेद एवं १८०० प्रभेद हैं। उन ३२ भेदों में से ३ आश्रय योग हैं, २ दल योग हैं, २० आकृति योग हैं तथा ७ संख्या योग कहे गये हैं। इस प्रकार नाभस योग को आश्रय, दल, आकृति एवं संख्या योगों में वर्गीकृत किया गया है। प्रथम नाभस योगों के आकृति-संख्या- आश्रय और दल ये ४भेद होते हैं। इनमें आकृतियोग के २०, संख्यायोग के ७, आश्रययोग के ३ और दलयोग के २ भेद होते हैं। चारों भेदों में से आकृतियोग अकेला होने के कारण २० ही प्रकार का रहता है। परन्तु और अन्य दो-दो, तीन-तीन, चार-चार अर्थात् आकृति-संख्या, आकृति-संख्या-आश्रय और आकृति-संख्या-आश्रय-दल ये आपस में बदलने के कारण, ९,१०,८ को क्रम से ३,३ तथा ४ से गुणने पर जितने अंक हों उतने भेद होते हैं। अर्थात् आकृति और संख्या के आपस में बदलने से ९× ३ = २७, आकृति-संख्या-आश्रय इनके आपस में बदलने से १० × ३ =३० और आकृति –संख्या-आश्रय-दल इनके आपस में बदलने से ८×४ = ३२ भेद होते हैं। वृहज्जातकम् में वराहमिहिर ने इन्हें संक्षेप में कहा है जबकि यवनों ने इनके विस्तारपूर्वक १८०० भेद कहे हैं। आश्रय योग का फल यव, कमल, वज्र, पक्षि, गोलक, केदार और शूल योगों के समान तथा दलयोगद्वय का फल केन्द्रस्थ ग्रहों के समान होने से इनके फल अलग से नहीं कहा है।

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

नाभस योग – वृहत्पराशरहोराशास्त्र के अनुसार नाभस योग के ३२ प्रकार के भेद एवं १८०० प्रभेद बतलाए गये है। वस्तुत: नाभस योग भी राज योग के अन्तर्गत ही आता है।

आकृति योग – ३२ प्रकार के नाभस योग के अन्तर्गत यूप, इषु आदि २० प्रकार आकृति योग के कहे गये है।

दल योग – दल योग २ प्रकार के हैं।

आश्रय योग – आश्रय के तीन भेद कहे गयें है।

संख्या योग – संख्या योग के ७ भेद कहे गये हैं।

गोल योग – सभी ग्रह एक राशि में स्थित हो तो गोल योग बनता है।

1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ख
2. ग
3. घ
4. ख
5. क
6. क
7. क

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वृहत्पराशरहोराशास्त्र - नाभसयोगाध्याय।
2. वृहज्जातकम् – नाभसयोगाध्याय:।
3. जातकपारिजात – नाभसयोगाध्याय:।
4. सारावली – नाभसयोगाध्याय:।

1.8 सहायक पाठ्यसामग्री

1. फलदीपिका – मूल लेखक – आचार्य मन्त्रेश्वर। टीकाकार – गोपेश ओझा।

2. सारावली – मूल लेखक – कल्याणवर्मा। टीकाकार- मुरलीधर चतुर्वेदी।

3. वृहज्जातकम् – मूल लेखक – वराहमिहिर, टीकाकार- आचार्य सत्येन्द्र मिश्र।

4. लघुजातकम् – मूल लेखक – वराहमिहिर, टीकाकार – कमलाकान्त पाण्डेय।

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नाभस योगों का विस्तृत वर्णन कीजिये।
2. आश्रय योग के भेदों का वर्णन करें।
3. दल योग क्या है? स्पष्ट कीजिये।
4. संख्या योग से आप क्या समझते है?
5. आकृति योग के भेद का उल्लेख कीजिये।
6. नाभस योग के भेद-प्रभेदों का स्पष्टतया उल्लेख कीजिये।

इकाई - 2 राज योग

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 राज योग परिचय

2.3.1 विविध ग्रन्थानुसार राज योग विचार

2.3.2 राज योग के स्वरूप एवं प्रभाव

2.4 सारांश

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.8 सहायक पाठ्यसामग्री

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई MAJY-602 के प्रथम खण्ड की दूसरी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – राज योग। इससे पूर्व आपने नाभस योग से जुड़े विभिन्न विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में 'राज योग' के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

'राज योग' फलित ज्योतिष का ही नहीं वरन् मानव जीवन से जुड़ा भी एक महत्वपूर्ण अंग है। प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में राजा की तरह जीवन व्यतीत करने हेतु इच्छुक रहता है। किसके जीवन में राज योग होगा अथवा नहीं? इन समस्त विषयों का अध्ययन हम इस इकाई में करेंगे।

अत: आइए इस इकाई में हम लोग 'राज योग' के बारे में उसके स्वरूप, महत्व एवं फल का विधिवत् शास्त्रानुसार अनुशासन करते हैं।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- राज योग क्या है? इसको परिभाषित कर सकेंगे।
- राज योग को समझा सकेंगे।
- राज योग कैसे बनता है, इसकी जानकारी प्राप्त कर लेंगे।
- विविध प्रकार के राजयोगों का अध्ययन कर सकेंगे।
- मानव जीवन में राज योग की महत्ता को बतला सकेंगे।

2.3 राज योग परिचय

ज्योतिष शास्त्र के फलित या होरा स्कन्ध के अन्तर्गत 'राज योग' एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है, जिसका मानव जीवन के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। यदि देखा जाय तो प्रायः प्रत्येक मानव अपने जीवन में राज योग की इच्छा या अभिलाषा रखता है, किन्तु सभी मानव के जीवन में राजयोग हो यह कथमपि संभव नहीं है। वस्तुतः राजयोग का निर्माण भी मानव द्वारा पूर्वजन्म में कृत्य शुभाशुभ कर्म फल पर ही आधारित होता है।

ज्योतिषशास्त्र के जातक या होरास्कन्ध के अन्तर्गत जितने भी प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं उनका अध्ययन करने पर प्राय: सभी ग्रन्थों में राजयोग का उल्लेख हमें प्राप्त होता है। इस इकाई में मेरा यह प्रयास रहेगा कि आप सभी जिज्ञासु अध्येताओं के लिए फलित ज्योतिष के कुछ प्रमुख ग्रन्थों का उल्लेख करते हुए आपको राजयोग से सम्बन्धित तथ्यों से अवगत करा सकुँ।

राज योग क्या है? यदि इस पर विचार किया जाय तो सामान्यतः जिस मनुष्य का जीवन राजा के समान व्यतीत हो, उसे 'राजयोग' कहा जाता है। राज योग का शाब्दिक अर्थ भी है - राजा के समान योग। ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्त्तकों एवं आचार्यों ने ग्रहों की स्थिति के आधार पर मानव के जीवन में होने वाले राजयोगों का उल्लेख विविध प्रकार से अपने-अपने ग्रन्थों में किया है।

2.3.1 विविध ग्रन्थानुसार राज योग विचार

सर्वप्रथम वराहमिहिर कृत् **'वृहज्जातकम्'** नामक ग्रन्थ से आरम्भ करते हैं। वृहज्जातकम् के राजयोगाध्याय में यवनाचार्य और जीवशर्मा के मतानुसार 'राजयोग' का वर्णन हमें इस प्रकार मिलता है। **मूल श्लोक**-

प्राहुर्यवना: स्वतुंगै: क्रूरै: क्रूरमतिर्महीपति:।
क्रूरैस्तु न जीवशर्मण: पक्षे क्षित्यधिप: प्रजायते।।

श्लोक का अर्थ है कि यदि किसी जातक के जन्मकाल में एक से अधिक शुभग्रह यदि अपने उच्च स्थान में स्थित हों तो वह जातक सुबुद्धि वाला राजा होता है। यदि क्रूरग्रह अपने उच्चस्थान में स्थित हो तो पापबुद्धि वाला राजा होता है। यह यवनाचार्य का मत है।

अपने उच्चस्थानों में क्रूरग्रहों के रहने से वह राजा नहीं होता है किन्तु राजा के तुल्य धनवान् होता है। यह जीवशर्मा का मत है।

बत्तीस प्रकार के राजयोग -

वक्रार्कजार्कगुरूभि: सकलैस्त्रिभिश्च।
स्वोच्चेषु षोडश नृपा: कथितैकलग्ने।।
द्वयेकाश्रितेषु च तथैकतमे विलग्ने।
स्वक्षेत्रगे शशिनि षोडश भूमिपा: स्यु:।। (वृहज्जातकम् राजयोगाध्याय, श्लोक-2)

अर्थात् जन्मकुण्डली में यदि भौम-शनि-सूर्य और गुरू ये चारों ग्रह अपने उच्चस्थानों में स्थित होकर इनमें से एक लग्न में स्थित हों तो चार प्रकार के राजयोग होते हैं। जैसे- मेष में सूर्य, कर्क में वृहस्पति, तुला में शनि और मकर में मंगल हो तथा शेषग्रह अन्यत्र कहीं भी हों तब लग्न में मेष राशि हो तो **एक**, कर्क राशि हो तो **दो**, तुला राशि हो तो **तीन** और मकर राशि हो तो **चार** ये **राजयोग** होते हैं।

इन्हीं चारों में से तीन ग्रह यदि अपने उच्चस्थानों में स्थित हों और उनमें से एक लग्न में हो तो बारह प्रकार के राजयोग होते हैं। जैसे- मेष में सूर्य, कर्क में गुरू और तुला में शनि तथा शेष ग्रह कहीं भी हों तब ऐसे में लग्न में मेष राशि हो तो **एक**, कर्क राशि हो तो **दो** और तुला राशि हो तो **तीन**।

मेष में सूर्य, कर्क में वृहस्पति और मकर में मंगल हो तथा शेषग्रह कहीं भी हों तब लग्न में मेष राशि हो तो **चौथा**, कर्क राशि हो तो **पाँचवाँ** और मकर राशि हो तो **छठा**।

मेष में सूर्य, तुला में शनि तथा मकर में मंगल हो और शेष ग्रह कहीं भी हों तब लग्न में मेष राशि रहे तो **सात**, तुला राशि रहे तो **आठ** और मकर राशि रहे तो **नव**।

कर्क में वृहस्पति, तुला में शनि और मकर में मंगल हो तथा शेषग्रह कहीं भी हो तब लग्न में कर्क राशि रहे तो **दश**, तुला राशि रहे तो **ग्यारह** और मकर राशि रहे तो **बारह**।

उपरोक्त बारह और चार मिलाकर सोलह राजयोग होते हैं। पूर्वोक्त चारों ग्रहों में से दो ग्रह अपने उच्च स्थानों में स्थित होकर लग्न में स्थित हों और चन्द्रमा अपनी राशि में हो तो बारह प्रकार के राजयोग होते हैं।

जैसे मेष में सूर्य तथा कर्क में चन्द्रमा और वृहस्पति दोनों हों, शेष ग्रह कहीं भी हों तो लग्न में मेष राशि हो तो **एक** और कर्क राशि हो तो **दो**।

मेष में सूर्य तथा कर्क में चन्द्रमा तुला में शनि और शेष ग्रह अन्यत्र हों तब लग्न में यदि मेष राशि हो तो **तीन**, तुला राशि हो तो **चार**।

मेष में सूर्य तथा कर्क में चन्द्रमा और मकर में मंगल हो शेषग्रह अन्यत्र हों तब लग्न में यदि मेष राशि हो तो **पाँच**, मकर राशि हो तो **छः**।

कर्क में वृहस्पति और चन्द्रमा, तुला में शनि हो शेषग्रह अन्यत्र हों तब लग्न में यदि कर्क राशि हो तो **सात** और तुला राशि हो तो **आठ**।

कर्क में वृहस्पति और चन्द्रमा, मकर में मंगल और शेषग्रह कहीं हो, तब लग्न में कर्क राशि हो तो **नव** एवं मकर राशि हो तो **दश**।

तुला में शनि, मकर में मंगल और कर्क में चन्द्रमा तथा शेषग्रह कहीं अन्यत्र हों तो लग्न में तुला राशि हो तो **ग्यारह** और मकर राशि हो तो **बारह**।

पूर्वोक्त सोलह और ये बारह मिलकर (16+12) = 28 राजयोग होते हैं। पूर्वोक्त चारों ग्रहों में एक ग्रह अपने उच्चस्थान में रहकर लग्न में स्थित हो और चन्द्रमा अपने ही स्थान में हो तो चार प्रकार के राजयोग होते हैं।

जैसे - कर्क में चन्द्रमा, मेष में सूर्य और शेष ग्रह अन्यत्र हों तब लग्न में मेश राशि हो तो **एक**। कर्क में चन्द्रमा तथा वृहस्पति और शेष ग्रह कहीं अन्यत्र हो तब लग्न में कर्क राशि हो तो **दो**। कर्क में चन्द्रमा, तुला में शनि और शेष ग्रह कहीं अन्यत्र हों तब लग्न में तुला राशि हो तो **तीन**। कर्क में चन्द्रमा, मकर में मंगल और शेष ग्रह कहीं अन्यत्र हों तब लग्न में मकर राशि हो तो **चार**। इस प्रकार

28 और ये चार मिलकर (28+4)= **कुल 32** प्रकार के राजयोग होते हैं।

अब 44 प्रकार के राजयोग कहते हैं -

वर्गोत्तमेगते लग्ने चन्द्रे वा चन्द्रवर्जितैः।

चतुराद्यैर्ग्रहैर्दृष्टे नृपा द्वाविंशतिः स्मृताः।। (श्लोक संख्या -3)

अर्थात् वर्गोत्तम में लग्न हो और उसको (चन्द्रमा को छोड़) अन्य चार, पॉच या छः ग्रह देखते हों तो 22 राजयोग और चन्द्रमा यदि वर्गोत्तम नवमांश में स्थित हों और उसको भी चार, पॉच या छः ग्रह देखते हों तो भी 22 राजयोग इस तरह दोनों मिलकर 44 राजयोग होते हैं।

जैसे - वर्गोत्तम लग्न को देखने वाले सूर्य -मंगल-बुध और वृहस्पति हों तो **एक**

सूर्य-मंगल-बुध और शुक्र हों तो **दो,**

सूर्य-मंगल-बुध और शनि हों तो **तीन,**

सूर्य-मंगल-बृहस्पति और शुक्र हों तो **चार,**

सूर्य-मंगल-वृहस्पति और शनि हों तो **पॉच**,

सूर्य-मंगल-शुक्र और शनि हों तो **छ**:,

सूर्य-बुध-वृहस्पति और शुक्र हों तो **सात**,

सूर्य-बुध-वृहस्पति और शनि हों तो **आठ**,

सूर्य-बुध-शुक्र तथा शनि हों तो **नव**,

सूर्य-वृहस्पति-शुक्र और शनि हों तो **दश**,

मंगल-बुध-वृहस्पति और शुक्र हों तो **ग्यारह**,

मंगल-बुध-वृहस्पति और शनि हों तो **बारह**,

मंगल-बुध-शुक्र और शनि हों तो **तेरह**,

मंगल-बृहस्पति-शुक्र तथा शनि हों तो **चौदह**,

बुध-वृहस्पति-शुक्र तथा शनि हों तो **पन्द्रह**,

वर्गोत्तम लग्न को देखने वाले सूर्य-मंगल-बुध-वृहस्पति और शुक्र हों तो **एक**,

सूर्य-मंगल-बुध-वृहस्पति तथा शनि हों तो **दो**,

सूर्य-मंगल-बुध- शुक्र और शनि हों तो **तीन,**

सूर्य-मंगल-वृहस्पति-शुक्र और शनि हों तो **चार,**

सूर्य-बुध-वृहस्पति-शुक्र और शनि हों तो **पॉच,**

मंगल-बुध-वृहस्पति-शुक्र और शनि हों तो **छः**

और शनि हों तो 22 ये राजयोग होते हैं।

ऐसे ही वर्गोत्तम में स्थित चन्द्रमा को चार, पॉच तथा छः ग्रहों को देखने से 22 राजयोग होते हैं। पूर्वोक्त 22 योग मिलाकर कुल 44 राजयोग होते हैं। यहॉ एक-एक राशियों का नियम रखने पर इन योगों की संख्या 528 (44×12) होगी।

पाँच प्रकार के राजयोग –

यमे कुम्भेऽर्केऽजे शशिनि गवि तैरेव तनुगै।
र्नृयुक्सिंहालिस्थै: शशिजगुरुवक्रैर्नृपतय:।।
यमेन्दू तुंगेऽगे सवितृशशिजौ षष्ठभवने।
तुलाजेन्दुक्षेत्रै: ससितकुजजीवैश्च नरपौ।।(रा0यो0अ0 श्लोक४)

अर्थात् कुभ्भ में शनैश्चर, मेष में सूर्य तथा वृष में चन्द्रमा हो तथा यहीं राशिलग्न रहे और बुध-वृहस्पति-मंगल ये क्रमश: मिथुन-सिंह तथा वृश्चिक राशियों में स्थित हों तो **तीन राजयोग** होते हैं।

जैसे – शनि कुम्भ में- सूर्य मेष में- चन्द्रमा वृष में- बुध मिथुन में – वृहस्पति सिंह में – मंगल वृश्चिक में और शेष ग्रह कहीं अन्यत्र हों, तब कुम्भ लग्न हो तो **एक**, मेष हो तो **दो**, वृष हो तो **तीसरा राजयोग।**

शनि और चन्द्रमा अपने उच्चस्थानों में स्थित होकर लग्न में स्थित हो और सूर्य-बुध कन्या राशि में स्थित हों तथा तुला-मेष कर्क इन राशियों में क्रमश: शुक्र मंगल एवं वृहस्पति हों तो **दो राजयोग** होता है।

शुक्र-शनि तुला में- चन्द्रमा वृष में- सूर्य-बुध कन्या में – मंगल मेष में वृहस्पति कर्क में और शेष ग्रह अन्यत्र कहीं हो तब लग्न में तुला हो तो **एक** और वृष हो तो **दूसरा** राजयोग होता है। **यही दो और पूर्वोक्त तीन मिलकर (2+3= 5) पाँच राजयोग होते हैं।**

तीन प्रकार के राजयोग –

कुजे तुंगेऽर्केन्द्वोर्धनुषि यमलग्ने च कुपति:।
पतिर्भूमेश्चान्य: क्षितिसुतविलग्ने सशशिनि।।
सचन्द्रे सौरेऽस्ते सुपरपतिगुरौ चापधरगे
स्वतुंगस्थे भानावुदयमुपयाते क्षितिपति:।।

अर्थात् मंगल अपने उच्चस्थान मकर में हों और सूर्य तथा चन्द्रमा धनु राशि में और शनि मकरस्थ होकर लग्न में रहे तो उत्पन्न बालक राजा होता है।

मकर राशि लग्न में हो, उसी में चन्द्रमा और मंगल हों और सूर्य धनुराशि में स्थित हो तो जातक राजा होता है।

मेषराशि लग्न में हो और उसी में १० अंश के मध्य में सूर्य हो तथा धनुराशि में वृहस्पति, तुलाराशि में चन्द्रमा और शनि स्थित हों तो जातक राजा होता है। इस प्रकार ये तीन राजयोग हुए।

दो प्रकार के राजयोग –

वृषोदये मूर्तिधनारिलाभगै: शशांकजीवार्किसितैर्नृपोऽपर:।
सुखे गुरौ खे शशितिग्मदीधितीयमोदये लाभगतैर्नृपोऽपरै:।।(वृहज्जातक- रा0यो0अ0,श्लोक-१७)

अर्थात् जन्मकाल में वृषलग्न हो और उसी में चन्द्रमा स्थित हो तथा वृहस्पति मिथुन में शनि तुला में एवं शेषग्रह मीन में स्थित हों तो यदि वह राजा का पुत्र हो तो राजा होता है, अन्य हो तो धनवान होता है।

वृहस्पति चतुर्थ स्थान में, चन्द्रमा और सूर्य दशमस्थान में, शनि लग्न में तथा शेषग्रह ग्यारहवें स्थान में स्थित हों तो यदि वह राजा का पुत्र हो तो राजा होता है, अन्य हो तो धनवान होता है।

अन्यं च –

मेषूरणायतनुगा: शशिमन्दजीवा
ज्ञारौ धने सितरवी हिबुके नरेन्द्र:।
वक्रासितौ शशिसुरेज्यसितार्कसौम्या
होरासुखास्तशुभखाप्तिगता: प्रजेश:।।(वृहज्जातक- रा0यो0अ0,श्लोक-१८)

इस श्लोक का अर्थ है कि चन्द्रमा दसवें स्थान में, शनि ग्यारहवें स्थान में, वृहस्पति लग्न में, बुध व मंगल दूसरे स्थान में तथा शुक्र और सूर्य चौथे स्थान में स्थित हो तो यदि वह राजा का पुत्र हो तो राजा होता है, अन्य हो तो धनवान् होता है।

मंगल व शनि लग्न में, चन्द्रमा चतुर्थ में, वृहस्पति सातवें में, शुक्र नवें में, सूर्य दसवें में और बुध ग्यारहवें स्थान में स्थित हो तो यदि वह राजा का पुत्र हो तो राजा होता है अन्य कुल में पैदा हो तो धनवान होता है।

एक प्रकार का राजयोग –

स्वोच्चसंस्थे बुधे लग्ने भृगौ मेषूरणाश्रिते।
सजीवेऽस्ते निशानाथे राजा मन्दारयो: सुते।। (वृहज्जातक- रा0यो0अ0,श्लोक-११)

अर्थात् कन्या लग्न हो तथा उच्च स्थान (कन्या) स्थित बुध लग्नस्थ हो और दसवें (मिथुन) स्थान में

शुक्र, वृहस्पति के साथ चन्द्रमा सप्तम (मीन) में तथा पॉचवें (मकर) में शनि एवं मंगल स्थित हों तो ऐसे योग में उत्पन्न जातक राजा होता है।

उच्चत्रिकोणगैर्बलसंस्थैस्त्रयाद्यैर्भूपतिवंशजा नरेन्द्राः।

पञ्चादिभिरन्यवंशजाता हीनैर्वित्तयुता न भूमिपाः स्युः।।(वृहज्जातक- रा0यो0अ0,श्लोक-१३)

अर्थात् जिनके जन्मकाल में तीन या चार ग्रह अपने उच्चस्थान या मूल त्रिकोण में बली होकर स्थित हों तो वे यदि राजवंश में उत्पन्न हुए हों तो राजा होते है और एक या दो ग्रहों के उच्चस्थ या मूल त्रिकोणस्थ होने से राजा नहीं होते, किन्तु राजा के तुल्य वैभवशाली होते हैं।

जिनके जन्मकाल में पाँच- छः या सात ग्रह अपने उच्चस्थान या मूल-त्रिकोण में बली होकर स्थित हों तो वे नीचकुल में जन्म लेकर भी राजा होते हैं और यदि पाँच कम तीन या चार ग्रह उच्चस्थ या मूल त्रिकोणस्थ हों तो राजा नहीं होते, परन्तु धनवान अवश्य होते है।

अपि च –

लेखास्थेऽर्केऽजेन्दौ लग्ने भौमे स्वोच्चे कुम्भे मन्दे।

चापं प्राप्ते जीवे राज्ञः पुत्रं विद्याद् भूमेर्नाथम्।।(वृहज्जातक- रा0यो0अ0,श्लोक-१४)

इसका अर्थ है कि यदि मेष लग्न हो तथा उसमें सूर्य एवं चन्द्रमा स्थित हों और मंगल अपने उच्च राशि (मकर) में, कुम्भ राशि में शनि तथा वृहस्पति धनुराशि में स्थित हो तो ऐसे योग में उत्पन्न राजा का पुत्र राजा होता है। कुछ विद्वान लेखास्थे पद के स्थान में लेयस्थे का उल्लेख करते हैं। जिसका अर्थ है कि सिंह में सूर्य स्थित हो और शेष ग्रह पूर्वोक्त हों तो भी राजयोग समझना चाहिए।

स्वर्क्षे शुक्रे पातालस्थे धर्मस्थानं प्राप्ते चन्द्रे।

दुश्चिक्यांगप्राप्तिप्राप्तैः शेषैर्जातः स्वामी भूमेः।।(वृहज्जातक- रा0यो0अ0,श्लोक-१५)

अर्थात् शुक्र यदि अपनी राशि में स्थित होकर चतुर्थ स्थान में स्थित हो और चन्द्रमा नवम स्थान में स्थित हो तथा शेषग्रह 3, 1 और 11 वें स्थान में स्थित हो तो ऐसे योग में उत्पन्न राजा का पुत्र राजा होता है।

सौम्ये वीर्ययुते तनुसंस्थे वीर्याढये च शुभे शुभयाते।

धर्मार्थोपचयेष्वथ शेषैर्धर्मात्मा नृपजः पृथिवीशः।।(वृहज्जातक- रा0यो0अ0,श्लोक-१६)

श्लोकार्थ है कि बली होकर बुध लग्न में एवं शुभग्रह अर्थात् वृहस्पति या शुक्र इन दोनों में से कोई भी नवम स्थान में तथा शेषग्रह 9,2, 3,6,10 एवं ग्यारहवें स्थानों में स्थित हों तो यदि वह राजपुत्र हो तो धर्मात्मा राजा होता है, यदि अन्य हो तो धर्मात्मा तथा धनवान होता है। कुछ आचार्य इस श्लोक में

शुभ याते पद के स्थान पर सुख याते ग्रहण करते हैं वहाँ सुख से चतुर्थ स्थान समझना चाहिए।

सारावली ग्रन्थानुसार राजयोग -

राजकुलोत्पन्न राजयोग व निम्नकुलोत्पन्न राजयोग एवं धनवान योग ज्ञान –

मूल श्लोक –

स्वोच्चत्रिकोणगृहगैर्बलसंयुतैश्च
त्रयाद्यैर्नृपो भवति भूपतिवंशजात:।
पञ्चादिभिर्जनपदप्रभवोऽपि सिद्धो
हीनै: क्षितीश्वरसमो न तु भूमिपाल:।। (सारावली, अध्याय-३५,श्लोक-२)

श्लोक का अर्थ है कि यदि जन्म के समय में तीन या चार ग्रह अपने उच्च में वा स्वमूलत्रिकोण में अथवा अपने घर में बलवान हों तो राजकुल में उत्पन्न पुरुष राजा होता है। यदि जन्म के समय पाँच अथवा छ: ग्रह पूर्वोक्त स्थिति में हों तो निम्न कुलोत्पन्न भी राजा होता है। यदि दो या एक ग्रह उच्च या मूलत्रिकोण या स्वगृह में हो तो राजा के समान होता है न कि राजा होता है।

अखिलभूमण्डल पालक योग ज्ञान –

उदयिगरिनिविष्टैर्मेषसंस्थैर्ग्रहेन्द्रै:।
शशिरुधिरसुरेडयैर्जायते पार्थिवेन्द्र:।।
जलनिधिरशनाया: पालक: सर्वभूमे-
र्हतरिपुपरिवार: सर्वत: फूत्करोति।। (सारावली, अध्याय-३५,श्लोक-८)

श्लोकार्थ है कि यदि जन्म के समय लग्नस्थ मेष राशि में चन्द्रमा, मंगल, गुरु हों तो जातक समुद्र रूपी मेखला से वेष्टित समस्त भूमण्डल का पालन करने वाला राजाधिराज होता है, तथा शत्रुदल का नाश करके चारों तरफ हुंकार करता है।

अधिक लक्ष्मी से युत राजयोग ज्ञान –

शिशिरकिरणे स्वोच्चे लग्ने पयोम्बुनिधे: समे।
घटधरगते भानो: पुत्रे मृगाधिपतौ रवि:।।
अलिगृहगतो वाचां नाथ: स्फुरत्कर्राजितो
यदि नरपति: स्फीतश्रीकस्तदा बदुवाहन:।।

अर्थात् यदि कुण्डली में परिपूर्ण चन्द्रमा वृष लग्न में हो तथा कुम्भ राशि में शनि, सिंह राशि में सूर्य, वृश्चिक राशि में शोभित किरणों से युक्त गुरु हो तो जातक अधिक लक्ष्मी व वाहनों से युत

राजा होता है।

उदाहरण द्वारा स्पष्ट चक्र –

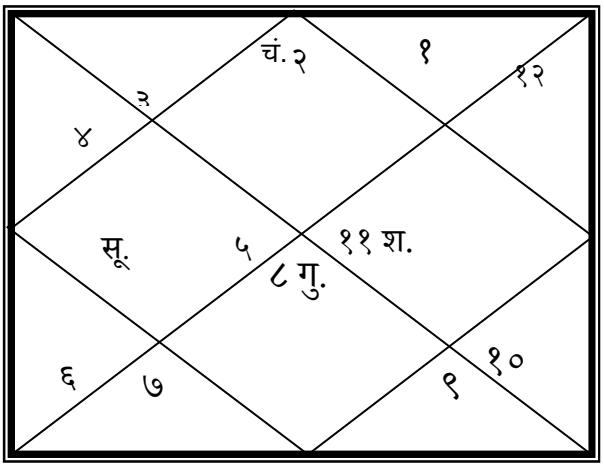

इन्द्र तुल्य राजयोग ज्ञान –

मृगे मन्दे लग्ने कुमुदवनबन्धुश्च तिमिग-
स्तथा कन्यां त्यक्त्वा बुधभवनसंस्थ: कुतनय:।
स्थितो नार्यां सौम्यो धनुषि सुरमन्त्री यदि भवेत्
तदा जातो भूप: सुरपतिसम: प्राप्तमहिमा।।

इसका अर्थ है कि यदि कुण्डली में मकर लग्न में शनि, चन्द्रमा मीन राशि में तथा कन्या राशि को छोड़कर बुध के घर में अर्थात् मिथुन में भौम, कन्या में बुध, धनु राशि में गुरु हो तो जातक इन्द्र के समान महिमा (प्रशंसा) पाने वाला राजा होता है।

स्वभुजबल से पृथ्वीपति योग ज्ञान –

उदयति गुरुच्चे तप्तहेमप्रभावो
हरिततुरगनाथो व्योममध्यावगाही।
यदि शशिबुधशुक्रा यस्य सूतो नरस्य
स्वभुजविजितभूमि: सर्वत: पार्थिवेन्द्र:।।

अर्थात् यदि कुण्डली में तपे हुए सुवर्ण की आभा के सदृश गुरु कर्क राशि में लग्न गत हो तथा सूर्य दशम भाव में व वृष राशि में चन्द्रमा-बुध-शुक्र हों तो जातक अपनी भुजाओं के बल से समस्त पृथ्वी को जीतने वाला राजा होता है।

अपारकीर्तिमान राज योग ज्ञान –

कार्मुके त्रिदशनायकमन्त्री भानुजो वणिजि चन्द्रसमेतः।
मेषगस्तु तपनो यदि लग्ने भूपतिर्भवति सोऽतुलकीर्तिः।।

श्लोक का अर्थ है कि यदि कुण्डली में मेष लग्न में सूर्य हो व धनु राशि में गुरु, शनि चन्द्रमा के साथ तुला में हो तो जातक अपार कीर्तिमान राजा होता है।

<u>वृहत्पराशरहोराशास्त्र ग्रन्थानुसार राज योग विचार</u> –

'वृहत्पराशरहोराशास्त्र' नामक ग्रन्थ पराशर मुनि के द्वारा लिखा गया है। पराशर मुनि ज्योतिषशास्त्र के अष्टादश प्रवर्त्तक में से एक है। उनके द्वारा कथित राजयोग का वर्णन इस प्रकार है-

महाराज योग –

लग्नेशे पंचमे भावे पंचमेशे च लग्नके।
पुत्रात्मकारकौ विप्र! लग्ने च पंचमे स्थिते।
स्वोच्चे स्वांशे स्वभे वाऽपि शुभग्रहनिरीक्षिते
महाराजाख्ययोगोऽत्र जातः ख्यातः सुखान्वितः।।

अर्थात् लग्नेश पंचम भाव में हो और पंचमेश लग्न में हो एवं आत्मकारक तथा पुत्रकारक दोनों लग्न या पंचम में अपनी उच्च राशि का होकर या अपने नवमांश में होकर शुभ ग्रह के द्वारा अवलोकित हों तो यह महाराजनामक योग होता है। इसमें जन्म लेने वाला जातक विख्यात और सुख से युक्त होता है।

राज योग –

भाग्येशः कारको लग्ने पंचमे स्पतमेऽपि वा।
राजयोगप्रदातारौ शुभखेटयुतेक्षितौ।।
लग्नेशात् कारकाच्चापि धने तुर्ये च पंचमे।
शुभखेटयुते भावे जातो राजा भवेद् ध्रुवम्।।
तृतीये षष्ठमे ताभ्यां पापग्रहयुतेक्षिते।
जातो राजा भवेदेवं मिश्रे मिश्रफलं वदेत्।।

भाग्येश तथा आत्मकारक दोनों लग्न, ५,७ भाव में हों, शुभग्रह से दृष्ट या युत हो तो वे राजयोगकारक होते हैं। लग्नेश या कारक से द्वितीय, चतुर्थ, पंचम शुभ ग्रह हो तो जातक निश्चय ही राजा होता है अथवा लग्न एवं कारक से ३,६ भाव में केवल पाप ग्रह से युक्त या दृष्ट हो तो भी

राजयोगकारक होता है। लग्न या कारक से ३,६ भाव में मिश्रित (शुभ, पापग्रह) ग्रह बैठे हों तो मिश्रित (धनवान) फल होता है।

जातक पारिजात ग्रन्थानुसार अनुसार राज योग –

कन्यामीननृयुग्मगोहरिधनु: कुम्भस्थितै: खेचरै:।
सेनामत्तमतंगवाजिविपुलो राजा यशस्वी भवेत्।।
तौलिच्छज्ञगवृषावनागृहगैर्जातोऽखिलक्ष्मापति।
गौंचापान्त्यभकेन्द्रगै: पृथुयशा: पृथ्वीश्वरो जायते।।

अर्थात् जन्मांग में समस्त ग्रह कन्या, मीन, मिथुन, वृष, सिंह, धनु और कुम्भ राशियों में स्थित हों तो जातक सेना, मत्त हाथी, घोड़े आदि के विपुल समूह से युक्त यशस्वी राजा होता है।

तुला, मेष, वृष और मीन राशियों में यदि समस्त ग्रह स्थित हों तो जातक समस्त पृथ्वी का अधिपति होता है।

वृष, धनु, मीन राशियों में स्थित ग्रह यदि केन्द्रस्थ हों तो जातक अनेक यश-कीर्ति से युक्त राजा होता है।

कन्यामेषतुलामृगेन्द्रघटगैर्जाजो महीपालको।
दुश्चिक्यप्रतिभारसातलगतैर्बह्वर्थदेशाधिप:।।
खेटा विक्रमबन्धुपुत्रगृहगा द्वौ वित्तधर्मस्थितौ।
शेषौ लग्नकलत्रराशिसहितौ राजा भवेद्धार्मिक:।।

यदि समस्त ग्रह कन्या, मेष, तुला, सिंह और कुम्भ राशियों में स्थित हों तो इस ग्रहयोग में उत्पन्न जातक राजा होता है।

तृतीय, पंचम और चतुर्थ भावों में यदि समस्त ग्रह स्थित हों तो अतुल धन-वैभवादि से युक्त अनेक देशों का राजा होता है।

यदि तृतीय, चतुर्थ, पंचम, द्वितीय, नवम, लग्न और सप्तम भावों में सभी ग्रह स्थित हों तो जातक धार्मिक राजा होता है।

इन्हीं योगों के सदृश अन्य जातक ग्रन्थों में सिंहासन योग, चतुश्चक्र योग, एकावली योग, चतु:सागर योग, प्रचण्ड योग एवं श्रीछत्र योग (भावकुतूहल ग्रन्थ में), तथा कनकदण्ड योग, डमरूक योग एवं ध्वज योग, राजहंस योग, गृद्धपुच्छ योग एवं चिह्नपुच्छ योगादि का उल्लेख (सोमजातक ग्रन्थ में), प्राप्त होता हैं।

अन्य राज योग –

चापाजसिंहभवनोदयगे धराजे
मित्रेक्षिते निजबलार्जितराज्यकर्ता।
दुश्चिक्यधर्मसुतगा रविचन्द्रजीवा
वीर्यान्विता यदि कुबेरसमो नृपालः।।

अर्थात् धनु, मेष अथवा सिंह राशि के लग्न में स्थित भौम यदि अपने मित्रग्रह (सूर्य, चन्द्रमा, और वृहस्पति) से दृष्ट हो तो इस योग में उत्पन्न जातक स्वार्जित राज्य का स्वामी होता है। सूर्य, चन्द्रमा और वृहस्पति यदि तृतीय, नवम और पंचम भावों में बलवान होकर स्थित हों तो जातक कुबेर के समान वैभवादि सम्पन्न राजा होता है।

नीचस्थितग्रहनवांशपतौ त्रिकोणे।
केन्द्रेऽथवा चरगृहे यदि जन्मलग्ने।।
तद्भावपे चरगृहांशसमन्विते वा।
जातो महीपतिरतिप्रबलोऽथवा स्यात्।।

अर्थात् नीचराशिगत ग्रह के नवमांशपति यदि त्रिकोण या केन्द्र में स्थित हो अथवा चरराशि का लग्न हो और जन्मलग्नाधिपति चरराशि के नवमांश में हो तो जातक राजा अथवा प्रबल प्रतापी होता है। जातकपारिजात ग्रन्थ के राजयोगाध्याय का अध्ययन करने पर हमें उसके अन्तर्गत पंचमहापुरूष योग, सुनफादि योग, भास्कर, इन्द्र, मरूत, बुधादि योग, भौमादि पंचताराग्रहोत्पन्न सुनफादि योग फल, गजकेसरी योग तथा नाभस योगादि समस्त योग का उल्लेख मिलता है।

सर्वार्थचिन्तामणि ग्रन्थानुसार राजयोग –

षड्भिर्ग्रहैरूच्चसमन्वितैः स्याद्राजाधिराजो बहुदेशभर्त्ता।
उच्चस्थितैः पंचभिरत्र राजा शक्त्यान्वितो देवगुरो विलग्ने।।

जिस किसी की कुण्डली में यदि षड्ग्रह (6 ग्रह) अपनी उच्चराशि में स्थित हो, तो इस योग में उत्पन्न मनुष्य निश्चय कर राजाधिराज होकर अनेक देशों का पालनहार होता है। यदि कुण्डली में पंचग्रहों की स्थिति अपनी-अपनी उच्च राशिगत हो तथा लग्नभाव में गुरूस्थित हो, तो मनुष्य सामर्थ्यशाली राजा होता है।

राजा होने का योग कथन –

लग्ने वृषे तत्र गते शशांके षड्भिग्रहैरूच्चगतैर्नृपः स्यात्।

कस्मिन् गृहे स्वोच्चयुते तु सर्वैः स्वक्षेत्रगैर्भूपतितुल्यजातः।।

अर्थात् जिस किसी की कुण्डली में यदि वृष लग्न में चन्द्रमा और षड्ग्रह अपनी-अपनी उच्च राशि में अवस्थित हो, तो इस योग में मनुष्य राजा होता है। सभी ग्रह कुण्डली के जिस किसी भी भाव में अवस्थित होकर उच्चस्थ होना चाहिए, तो मनुष्य राजा होता है, सभी ग्रह यदि स्वराशिगत हों, तो मनुष्य इस योग में केवल राजा के तुल्य होता है।

सम्राट योग कथन –

दृश्यते युज्यते वापि चन्द्रजेन वृहस्पतिः।
शिरसा शासनं तस्य धारयन्ति नृपास्तदा।।

जिस किसी की कुण्डली में गुरु यदि बुध से देखा जाता हो अथवा युक्त हो, तो इस योग में उत्पन्न मनुष्य की आज्ञा को राजे-महाराजे अपने शिर पर धारण करने वाले होते हैं अर्थात् मनुष्य सम्राट होता है।

धार्मिक व चक्रवर्ती नीच भंग राजयोग कथन -

नीचस्थितो जन्मनि यो ग्रहः स्यात्तद्राशिनाथोऽथ तदुच्चनाथः।
स चेद्विलग्नाद्यदि केन्द्रवर्ती राजा भवेद्धार्मिकचक्रवर्ती।।

श्लोक का अर्थ है कि जिस किसी की कुण्डली में यदि कोई ग्रह अपनी नीच राशि में स्थित हो और उस ग्रह की उच्चराशि का स्वामी अथवा जिस राशि में वह ग्रह स्थित है, उस राशि का स्वामी ग्रह जन्मलग्न से केन्द्र में स्थित हो, तो इस योग में उत्पन्न होने पर मनुष्य धार्मिक और चक्रवर्ती राजा होता है।

भूपतितुल्य भाग्यवान योग कथन –

निशाकरे केन्द्रगते विलग्नं त्यक्त्वा त्रिकोणे यदि जीवदृष्टे।
शुक्रेण दृष्टे बलपूर्णयुक्ते जातो नरो भूपतितुल्यभागः।।

जिस किसी की कुण्डली में यदि बलवान चन्द्र लग्न को छोड़कर अन्य केन्द्र भाव ४,७,१० में अथवा त्रिकोण ५,९ भाव में स्थित होकर गुरु अथवा शुक्र से देखा जाता हो, तो इस प्रकार के ग्रहयोग में उत्पन्न मनुष्य राजा के तुल्य भाग्यवान होता है।

नीचोच्च भंग राजयोग कथन –

नीचस्थिता जन्मनि ये ग्रहेन्द्राः स्वोच्चांशगा राजसमानभाग्याः।

उच्चस्थिता चेदपि नीचभागा ग्रहा न कुर्वन्ति तथैव भाग्यम्।।

अर्थात् जिस किसी की कुण्डली में यदि कोई ग्रह अपनी नीच राशि में होकर नवमांश में अपनी उच्च राशि में स्थित हो, तो इस स्थिति में मनुष्य राजा के समान भाग्यवान होता है।

कुण्डली में यदि कोई ग्रह अपनी उच्चराशि में होकर नवमांश में वह अपनी नीच राशि में स्थित हो, तो इस स्थिति में मनुष्य का राजा के समान भाग्य नहीं होता है।

राजयोग भंग योग कथन –

तुलायां दशमे भागे स्थित: पंकजबोधन:।
सहस्रराजयोगानां फलं नीचत्वमाप्नुयात्।।

जिस किसी की कुण्डली में सूर्य यदि अपनी नीचराशि तुला के दस (१०) अंश में स्थित हो, तो इस स्थिति के प्राप्त रहने पर मनुष्य सहस्र या हजार राजयोगों के रहने पर भी हीनता को प्राप्त हो जाता है।

भृगो: पुत्रोऽपि नीचस्थो राजयोगविनाशद:।
उल्कापातद्यप्रकाशे ग्रहे जातोऽपि भंगग:।।

अर्थात् जिस किसी की कुण्डली में यदि शुक्र भी नीच राशिगत हो, तो मनुष्य के राजयोग का विनाश हो जाता है तथा जन्म के समय उल्का, पात आदि अप्रकाश ग्रह लग्न में स्थित होकर राजयोग को नष्ट करते हैं।

बोध प्रश्न –

1. राज योग का अर्थ है।

   क. राजा के समान योग ख. राजा ग. राज्याधिपति घ. कोई नहीं

2. किसी जातक के जन्मकाल में एक से अधिक शुभग्रह यदि अपने उच्च स्थान में स्थित हों तो वह जातक राजा होता है।

   क. सुबुद्धि वाला ख. दुर्बुद्धि वाला ग. विद्यावान घ. चतुर

3. वृहज्जातक में कितने प्रकार के राजयोग का वर्णन है।

   क. २४ ख.३२ ग.२६ घ. २८

4. जातकपारिजात निम्न में किसकी रचना है।

   क. वैद्यनाथ ख. पराशर मुनि ग. वराहमिहिर घ. गणेश

5. जिस जातक की कुण्डली में शुक्र नीच राशि गत हो तो क्या होता है।

क. राजयोग ख. राजयोग का विनाश ग. विद्यावृद्धि घ. शत्रुवृद्धि

6. जिस किसी की कुण्डली में गुरु यदि बुध से देखा जाता हो अथवा युक्त हो तो कौन सा योग बनता है।

क. सम्राट योग ख. रंक योग ग. दानवीर योग घ. धार्मिक योग

7. निम्न में सारावली नामक ग्रन्थ के लेखक कौन है।

क. वराहमिहिर ख. कल्याणवर्मा ग. कमलकार घ. भास्कर

2.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि ज्योतिष शास्त्र के फलित या होरा स्कन्ध के अन्तर्गत 'राज योग' एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है, जिसका मानव जीवन के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। यदि देखा जाय तो प्रायः प्रत्येक मानव अपने जीवन में राज योग की इच्छा या अभिलाषा रखता है, किन्तु सभी मानव के जीवन में राजयोग हो यह कथमपि संभव नहीं है। वस्तुतः राजयोग का निर्माण भी मानव द्वारा पूर्वजन्म में कृत्य शुभाशुभ कर्म फल पर ही आधारित होता है।

ज्योतिषशास्त्र के जातक या होरास्कन्ध के अन्तर्गत जितने भी प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं उनका अध्ययन करने पर प्राय: सभी ग्रन्थों में राजयोग का उल्लेख हमें प्राप्त होता है। इस इकाई में मेरा यह प्रयास रहेगा कि आप सभी जिज्ञासु अध्येताओं के लिए फलित ज्योतिष के कुछ प्रमुख ग्रन्थों का उल्लेख करते हुए आपको राजयोग से सम्बन्धित तथ्यों से अवगत करा सकुँ।

राज योग क्या है? यदि इस पर विचार किया जाय तो सामान्यतः जो राजा के समान जीवन व्यतीत करें, उसे राजयोग कहा जाता है। राज योग का शाब्दिक अर्थ भी है - राजा के समान योग। ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्त्तकों एवं आचार्यों ने ग्रहों की स्थिति के आधार पर मानव के जीवन में होने वाले राजयोगों का उल्लेख विविध प्रकार से अपने-अपने ग्रन्थों में किया है।

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

राज योग – राजा के समान योग।

भृगु – शुक्र

इज – वृहस्पति

केन्द्र – १,४,७,१० भाव को केन्द्र कहते है।

आर – मंगल

त्रिकोण – ५ एवं ९ स्थान को त्रिकोण कहते है।

नवमांश – राशि का नवॉ अंश नवमांश कहलाता है। ३ अंश २० कला १ नवमांश का मान होता है।

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क
2. क
3. ख
4. क
5. ख
6. क
7. ख

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वृहज्जातकम् - राजयोगाध्याय:।
2. जातकपारिजात – राजयोगाध्याय:।
3. वृहत्पराशरहोराशास्त्र – राजयोगाध्याय:।
4. सारावली – राजयोगाध्याय:।
5. सर्वार्थचिन्तामणि – राजयोगाध्याय:।
6. फलदीपिका – राजयोगाध्याय:।

2.8 सहायक पाठ्यसामग्री

1. फलदीपिका – मूल लेखक – आचार्य मन्त्रेश्वर। टिकाकार – गोपेश ओझा।
2. सारावली – मूल लेखक – कल्याणवर्मा। टिकाकार- मुरलीधर चतुर्वेदी।
3. वृहज्जातकम् – मूल लेखक – वराहमिहिर, टिकाकार- आचार्य सत्येन्द्र मिश्र।
4. लघुजातकम् – मूल लेखक – वराहमिहिर, टिकाकार – कमलाकान्त पाण्डेय।

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वृहज्जातक ग्रन्थानुसार दो प्रकार के राजयोगों का विस्तृत वर्णन कीजिये।
2. ग्रन्थाधारित बत्तीस प्रकार के राजयोगों का व्याख्या कीजिये।
2. वराहमिहिर के अनुसार पाँच प्रकार के राजयोग का उल्लेख करें।।
3. जातकपारिजात के अनुसार राजयोग का वर्णन कीजिये।
4. राज योग किसे कहते हैं? सोदाहरण विस्तार पूर्वक लिखिये।
5. नीचोच्च भंग राजयोग से आप क्या समझते है?
6. वृहत्पराशर होराशास्त्र एवं सारावली के अनुसार राजयोग का महत्व प्रतिपादित कीजिये।

इकाई - 3 चन्द्रादि योग

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 चन्द्रादि योग परिचय
3.3.1 चन्द्रमा से बनने वाले योग
3.4 अन्य विविध योग
3.5 सारांश
3.6 पारिभाषिक शब्दावली
3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.9 सहायक पाठ्यसामग्री
3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -602 के प्रथम खण्ड की तीसरी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – चन्द्रादि योग। इससे पूर्व आपने 'राज योग' से जुड़े विभिन्न विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में 'चन्द्रादि योग' के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

'चन्द्रादि योग' से तात्पर्य है – चन्द्रमा आदि ग्रहों से बनने वाले योग। फलित ज्योतिष में चन्द्रमा सबसे प्रमुख माना गया है। मनुष्य के मन से लेकर उसके समस्त जीवन पर स्वगत्यानुसार इसका तीव्रतर प्रभाव होता है।

अत: आइए इस इकाई में हम लोग 'चन्द्रादि योग' के बारे में उसके स्वरूप तथा फलाफल के बारे में अध्ययन करते हैं।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- चन्द्रादि योग को परिभाषित कर सकेंगे।
- चन्द्रादि योग कितने प्रकार के होते हैं, समझा सकेंगे।
- चन्द्रमा से बनने वाले योगों को समझ लेंगे।
- चन्द्रादि योगों के शुभाशुभ फल को समझा सकेंगे।

3.3 चन्द्रादि योग

चन्द्रादि योग से तात्पर्य है – चन्द्रमा ग्रह द्वारा बनने वाला योग। प्राय: फलित ज्योतिष के समस्त ग्रन्थों में चन्द्रादि योग का उल्लेख हमें प्राप्त होता है। सुनफा, गजकेसरी आदि अनेक योग इसके उदाहरण है। चन्द्रमा को ग्रहों में सूर्य के समान ही राजा कहा गया है। जैसा कि वराहमिहिर कहते है- राजा रवि: शशिधरश्च...0। चन्द्रमा मन का कारक ग्रह है। अत: जातक के मन को सबसे ज्यादा चन्द्रमा ही प्रभावित करता है। प्रस्तुत इकाई में चन्द्रमा से बनने वाले प्रमुख योगों का वर्णन किया जा रहा है। आचार्य वराहमिहिर कृत वृहज्जातकम् नामक ग्रन्थ में चन्द्रमा से बनने वाले योग इस प्रकार है।

3.3.1 चन्द्रमा से बनने वाले योग

सूर्य के स्थान से चन्द्रस्थितवश फल –

अधमसमवरिष्ठार्ककेन्द्रादिसंस्थे।
शशिनि विनयवित्तज्ञानधीनैपुणानि।।

अहनि निशि च चन्द्रे स्वेऽधिमित्रांशके वा।
सुरगुरुसितदृष्टे वित्तवान् स्यात् सुखी च।।

अर्थात् जिसके जन्मकाल में सूर्य के स्थान से चन्द्रमा केन्द्र १,४,७,१० में स्थित हो तो उसके शील,धन, शास्त्रज्ञान, बुद्धि और चातुर्य ये अधम होते हैं अर्थात् नहीं होते हैं। पणफर २,५,८,१ में स्थित हो तो सम अर्थात् न कम न अधिक और आपोक्लिम ३,६,९,१२ में स्थित हो तो वरिष्ठ अर्थात् उत्तम होते हैं।

धनसुख योग – जिसका जन्म दिन में हुआ हो और चन्द्रमा जिस किसी राशि में अपने या अधिमित्र के नवमांश में स्थित हो तथा उसे वृहस्पति देखता हो अथवा रात्रि में जन्म हुआ हो और चन्द्र की उपरोक्त स्थिति हो तथा उसे शुक्र देखता हो तो वह जातक धनवान तथा सुखी होता है।

अधियोग नामक योग –

सौम्यै: स्मरारिनिधनेष्वधियोग इन्दो
स्तस्मिंश्चमूपसचिवक्षितिपालजन्म।
सम्पन्नसौख्यविभवा हतशत्रवंश्च।
दीर्घायुषो विगतरोगभयाश्च जाता:।।

अर्थात् चन्द्रमा के स्थान से छठे-सातवें और आठवें इन तीनों में या दो में अथवा एक ही स्थान में शुभग्रह स्थित हो तो अधियोगनामक योग होता है। यह सात प्रकार का होता है। जैसे – छठे स्थान में सभी शुभग्रह स्थित हो तो एक सातवें में दो आठवें में तीन छठें, सातवें में चार, छठे आठवें में पाँच, सातवें आठवें में छ: और छठे सातवें-आठवें में सात।

इस अधियोग में जिसका जन्म हो वह सेनापति मन्त्री या राजा होता है। अर्थात् वे शुभग्रह यदि निर्बल हो तो सेनापति, मध्यबली हो तो मन्त्री और यदि पूर्ण बली हो तो राजा होता है।

इस योग वाले सेनापति मन्त्री या राजा सुखयुत ऐश्वर्ययुत, शत्रुहीन, दीर्घायु और रोगभयविहीन होते हैं। यदि शुभाशुभ ग्रह इन स्थानों में हो शुभाशुभ फल होता है और यदि पापग्रह हो तो पापफल होता है।

हित्वार्क सुनभानभाधुरुधुरा: स्वान्त्योभयस्थैर्ग्रहै:।
शीतांशो: कथितोऽन्यथा तु बहुभि: केमद्रुमोऽन्यैस्त्वसौ।।
केन्द्रे शीतकरेऽथवा ग्रहयुते केमद्रुमो नेष्यते।
केचित् केन्द्रनवांशकेषु च वदन्त्युक्तिप्रसिद्धा न ते।।

सूर्य को छोड़कर अन्य पंचतारा ग्रहों में कोई एक यदि चन्द्रमा से दूसरे-बारहवें या दोनों स्थानों में

स्थित हो तो क्रम से सुनफा, अनफा और दुरूधरा ये तीन योग होते हैं अर्थात् दूसरे स्थान सुनफा, बारहवें में अनफा और दोनों में दुरूधरा योग होता है।

इससे अन्यथा अर्थात् चन्द्रमा से दूसरे या बारहवें स्थान में कोई भी ग्रह नहीं हो तो केमद्रुम योग होता है। ऐसा बहुत आचार्य कहते है। कतिपय आचार्य कहते हैं कि चन्द्रमा अन्य ग्रहों से युक्त हो या लग्न से १,४,७,१० में स्थित हो तो केमद्रुम योग नहीं होता है। कुछ आचार्य कहते हैं कि चन्द्रमा से ४ स्थान में सूर्य को छोडकर कोई ग्रह स्थित हों तो सुनफा दसवें स्थान में अनफा दोनों में दुरूधरा तथा ४,१० स्थान में कोई भी ग्रह न हो तो केमद्रुम योग होता है।

सुनफा अनफा आदि योगों के भेद –

त्रिंशत् सरूपा सुनभानभाख्याः।
षष्टित्रयं धौरूधुराः प्रभेदाः।।
इच्छाविकल्पैः क्रमशोऽभिनीय
नीते निवृत्तिः पुनरप्यनीतिः।।

अर्थात् चन्द्रमा से दूसरे स्थान में मंगल बुध, गुरु, शुक्र और शनि इनमें से एक, दो, तीन, चार एवं पाँच ग्रहों के रहने से ३१ प्रकार के सुनफा योग होता है। ऐसे ही १२ वें स्थान से ३१ प्रकार का अनफा योग भी होता है।

२ और १२ वें इन दोनों स्थानों में उक्त ग्रहों में से भिन्न-2 एक और एक, दो और एक, तीन और एक, चार और एक, एक ओर तीन, एक और चार, एक और दो, दो और दो, तीन और दो तथा दो और तीन ग्रहों के रहने पर १८० प्रकार का दुरूधरा योग होता है।

सुनफा अनफा योगों के फल –

स्वयमधिगतवित्तः पार्थिववस्तत्समो वा।
भवति हि सुनभायां धीधनख्यातिमांश्च।।
प्रभुरगदशरीरः शीलवान् ख्यातकीर्ति
र्विषयसुखसुवेषो निर्वृतश्चानभायाम्।।

अर्थात् जिसके जन्मकाल में सुनफायोग हो वह जातक अपने ही कमाये हुए धन से धनवान् और राजा या राजा के समान एवं उत्तम बुद्धि-धन व कीर्ति से युक्त होता है। अनफा योग हो तो वह जातक समर्थ, रोगरहित, शीलयुक्त, विख्यातकीर्ति सांसारिक सुख से युक्त सुन्दर वस्त्राभूषण धारण करने वाला तथा संतुष्ट स्वभाव वाला होता है।

दुरूधरा – केमद्रुम योगों के फल –

उत्पन्नभोगसुखभाग् धनवाहनाढय
स्त्यागान्वितो धुरूधुराप्रभवः सुभृत्यः।
केमद्रुमे मलिनदुःखितनीचनिस्स्वः।
प्रेष्यः खलश्च नृपतेरपि वंशजातः।।

जन्मकाल में दुरूधरा योग हो तो वह जातक किसी तरह से प्राप्त सामग्री से सुखभोगी धन व वाहन से युक्त दाता और सुन्दर दासवाला होता है। जिसके जन्मकाल में केमद्रुम योग हो वह देहादि से मलिन दु:खित नीचकर्म करने वाला निर्धन दासकार्य करने वाला और दुष्टस्वभाव का होता है। यदि वह राजवंश में उत्पन्न हुआ तो तब भी ऐसा ही होता है।

सुनफादि योगकारक भौमादिग्रहवश फल –

उत्साह शौर्यधनसाहसवान् महीजे
सौम्ये पटुः सुवचनो निपुणः कलासु।
जीवेऽर्थधर्मसुखभांक नृपपूजितश्च
कामी भृगौ बहुधनो विषयोपभोक्ता।।

अर्थात् सुनफा अनफा योगकारक यदि मंगल हो तो उक्त योगोत्पन्न जातक उद्यमी, रणप्रिय धनवान तथा साहसी होता है। बुध हो तो चतुर, मीठे वचन वाला, तथा कारीगरी में बहुत निपुण होता है। वृहस्पति हो तो धर्मयुक्त सुखभोगी और राजाओं से पूज्य होता है। शुक्र हो तो कामी बहुत धनवान और विषयभोगी होता है।

योगकारक शनिफल –

परविभवपरिच्छदोपभोक्ता
रवितनये बहुकार्यकृद् गणेशः।
अशुभकृदुडुपोऽह्नि दृश्यमूर्ति
र्गलिततनुश्च शुभोऽन्यथान्यदूह्यम्।।

शनि योगकारक हो तो जातक पराये धन तथा वस्तुओं का भोग करने वाला बहुत से कार्य करने वाला और बहुतों का स्वामी होता है। उक्त योगकारक यदि एक से अधिक ग्रह हों तो केवल योग का ही फल होता है। वहाँ ग्रहों का फल नहीं होता।

दिन में जन्म हो और जन्मकाल में चन्द्रमा दृश्यचक्रार्द्ध (सातवें से लग्न पर्यन्त) में स्थित हो तो अशुभकारक ओर अदृश्यचक्रार्द्ध (लग्न से सातवें स्थान तक) में स्थित हो तो शुभकारक होता है।

यदि रात्रि में जन्म हो तब चन्द्रमा अदृश्यचक्रार्द्ध में स्थित हो तो अशुभकारक और दृश्यचक्रार्ध में स्थित हो तो शुभकारक होता है।

लग्न व चन्द्र से उपचय स्थित शुभग्रहों का फल –

लग्नादतीव वसुमान् वसुमांछशांकात्
सौम्यग्रहैरूपचयोपगतैः समस्तैः।
द्वाभ्यां समोऽल्पवसुमाश्च तदूनताया
मन्येषु सत्स्वपि फलेष्विदमुत्कटेन।।

जन्मकाल में लग्न से उपचय अर्थात् ३,६,१०,११ वें स्थान में सभी शुभग्रह स्थित हों तो वह जातक अतिशय धनवान होता है। यदि चन्द्रमा से उपचय स्थान में सभी शुभग्रह स्थित हो तो धनवान होता है। यदि २ ही शुभग्रह उक्त स्थान में हो तो मध्यम धन वाला होता है। यदि एक ही शुभ ग्रह हो तो अल्प धनवान और यदि कोई ग्रह नहीं हो तो दरिद्र होता है। यदि कुण्डली में अन्य बहुत से कुयोग हों और यह योग हो तो इसी का पूर्ण फल होता है अन्य कुयोगों का फल नहीं होता।

वृहत्पराशरहोराशास्त्र ग्रन्थानुसार कथित चन्द्रादि योग -

अल्पमध्यमोत्तम योग

सहस्त्ररश्मितश्चन्द्रे कण्टकादिगते क्रमात्।
धनधीनैपुणादीनि न्यूनमध्योत्तमानि हि।।

सूर्य से चन्द्रमा यदि केन्द्र (1, 4, 7, 10) में हो तो जातक को धन, बुद्धिमान, यश आदि स्वल्प होता हैं; पणकर (2, 5, 8, 11 भाव) में हो तो मध्यम एवं यदि आपोक्लिम (3, 6, 9, 12 भाव) में हो तो जातक को धन, बुद्धि, कौशलता आदि उत्तम कोटि के होते हैं।

शुभ तथा अशुभ योग

स्वांशे वा स्वाधिमित्रांशे स्थितश्च दिवसे शशी।
गुरुणा दृश्यते तत्र जातो धनसुखान्वितः।।
स्वांशे वा स्वाधिमित्रांशे स्थितश्च शशभृन्निशि।
शुक्रेण दृश्यते तत्र जातो धनसुखान्वितः।।
एतद्विपर्ययस्थे च शुक्रेज्यानवलोकिते।
जायतेऽल्पधनी बालो योगेऽस्मिन्निर्धनोऽथवा।।

जातक का जन्म दिन में हो और चन्द्रमा अपने या अधिमित्र के नवमांश में हो तथा उस पर गुरू की दृष्टि हो तो जातक धनवान और सुखी होता हैं। रात्रि का जन्म हो और चन्द्रमा अपने या

अधिमित्र के नवमांश में स्थित हो, उस पर शुक्र की दृष्टि हो तो जातक धनी और सुखी होता हैं। इससे विपरीत हो और शुक्र ये दृष्ट न हो तो जातक अल्प धनी या निर्धन होता हैं।

अधियोग

चन्द्राद्रन्ध्रारिकामस्थैः सौम्यैः स्यादधियोगकः।
तत्र राजा च मन्त्री च सेनानीश्च बलक्रमात्।।

चन्द्रमा से 8, 6, 7 भाव में शुभ ग्रह स्थित हों तो अधियोग होता हैं। उसमें जन्म लेने वाला जातक ग्रहों के बलाबलानुसार राजा, मन्त्री अथवा सेनानायक होता हैं।

उत्तम-मध्यम-अल्प धनयोग

चन्द्राद् वृद्धिगतैः सर्वैः शुभैर्जातो महाधनी।
द्वाभ्यां मध्यधनो जात एकेनाऽल्पधनो भवेत्।।

चन्द्रमा से वृद्धि (3, 6, 10, 11) स्थान में समस्त शुभ ग्रह बैठे हों तो जातक महाधनी होता हैं। दो शुभ ग्रह हों तो मध्य धनी और एक शुभ ग्रह हो तो जातक अल्प धनी होता हैं।

सुनफा-अनफा तथा दुरूधरा योग

चन्द्रात् स्वान्त्योभयस्थे हि ग्रहे सूर्यं विना क्रमात्।
सुनफाख्योऽनफाख्यश्च योगो दुग्धराह्वयः।।

सूर्य को छोड़कर अन्य ग्रह चन्द्रमा में द्वितीय भाव में हो तो सुनफा, द्वादश भाव में ग्रह हों तो अनफा और दोनों स्थान में ग्रह स्थित हों तो दुरूधरा नामक योग होता है।

सुनफा-अनफा दुरूधरा योगफल-

राजा वा राजतुल्यो वा धीधनख्यातिमांगनः।
स्वभुजार्जितवित्तश्च सुनफायोगसम्भवः।।
भूपोऽगदशरीरश्च शीलवान् ख्यातकीर्तिमान्।
सुरूपश्चाऽनफाजातो सुखैः सर्वैः समन्वितः।।
उत्पन्नसुखभुग् दाता धनवाहनसंयुतः।
सद्भृत्यो जायते नूनं जनो दुरधराभवः।।

सुनफा योग में उत्पन्न जातक राजा ये राजतुल्य, मतिमान, धनी, विख्यात एवं अपने बाहुबल से उपार्जित धन से युक्त होता हैं। अपफा योग में उत्पन्न पुरूष राजा, गद (रोग) से हीन, सुशील, विख्यात, कीर्तियुक्त, सुन्दर तथा समस्त सुख से युक्त होता हैं। दुरधरा नामक योग में जन्म लेने वाला जातक सुखी, दाता, धन-वाहनादि से परिपूर्ण एवं कुशल नौकर वाला होता हैं।

केमद्रुम योग

चन्द्रादाद्यधनाऽन्त्यस्थो विना भानुं न चेद् ग्रहः।
कश्चित् स्याद्वा विना चन्द्रं लग्नात् केन्द्रगतोऽथ वा।।
योगः केमदुरमो नाम तत्र जातोऽतिगर्हितः।
बुद्धिविद्याविहीनश्च दरिद्रापत्तिसंयुतः।।

चन्द्रमा के साथ या चन्द्रमा से 2, 12 भाव में सूर्य को छोड़कर अन्य ग्रह न हों अथवा लग्न से केन्द्र में चन्द्रमा को छोड़कर अन्य ग्रह न हों तो केमद्रुम नामक योग होता हैं। इनमें जन्म लेने वाला जातक अत्यन्त निन्दित, बुद्धि-विद्या से हीन, दरिद्र और आपत्ति से युक्त होता हैं।

चन्द्रयोग में विशेषता

अन्ययोगफलं हन्ति चन्द्रयोगो विशेषतः।
स्वफलं प्रददातीति बुधो यत्नाद् विचिन्तयेत्।।

पूर्वोक्त शुभाशुभ चन्द्रजन्य योग अन्य योगों का नाश करके अपना फल देता हैं। इसीलिए विद्वानों को यत्नपूर्वक सर्वप्रथम इस योग को देखना चाहिए।

3.4 अन्य विविध योग -

शुभ एवं अशुभ योग

लग्ने शुभयुते योगः शुभः पापयुतेऽशुभः।
व्ययस्वगैः शुभैः पापैः क्रमाद्योगौ शुभाऽशुभौ।।

लग्न शुभ ग्रहों से युक्त हो तो शुभ योग एवं लग्न केवल पाप ग्रहों से युक्त हो तो अशुभ योग होता हैं। यदि लग्न में ग्रह न जो एवं द्वितीय तथा द्वादश में शुभ ग्रह हों तो शुभ योग और द्वितीय-द्वादश में केवल पाप ग्रह हों तो अशुभ योग होता हैं।

शुभाशुभ योग के फल

शुभयोगोद्भवो वाग्मी रूपशीलगुणान्वितः।
पापयोगोद्भवः कामी पापकर्मा परार्थयुक्।।

शुभ योग में उत्पन्न जातक वाचाल तथा रूप, शील एवं गुणों से युक्त होता हैं। अशुभ योग में उत्पन्न जातक कामी, पापकर्मी तथा दूसरे के धन को अपहरण करने वाला होता हैं।

गजकेशरी योग

केन्द्रे देवगुरौ लग्नाच्चन्द्राद्वा शुभदृग्युते।
नीचास्तारिगृहैर्हीने योगोऽयं गजकेशरी।।

गजकेसरिस...तस्तेजस्वी धनवान् भवेत्।

मेधावी गुणसम्पन्नो राजप्रियकरो नरः।।

लग्न या चन्द्रमा से केन्द्र में गुरू हो और केवल शुभ ग्रह से युक्त या दृष्ट हो तथा गुरू नीच, अस्त या शत्रुगृही न हो तो गजकेशरी नामक योग होता हैं। इस **गजकेशरी** योग में जिस जातक का जन्म होता हैं, वह जातक तेजस्वी, धनवान, मेधावी, सभी गुणों से सम्पन्न एवं राजप्रिय होता हैं।

अमल कीर्तियोग

दशमेऽङगात्तथा चन्द्रात् केवलैश्च शुभैर्युते।

स योगोऽमलकीत्र्याख्यः कीर्तिराचन्द्रतारकी।।

राजपूज्यो महाभोगी दाता बन्धुजनप्रियः।

परोपकारी धर्मात्मा गुणाढयोऽमलकीर्तिजः।।

लग्न या चन्द्रमा से दशम भाव में केवल शुभग्रह बैठे हों तो अमलकीर्ति नामक योग होता हैं। इस योग में उत्पन्न जातक जब तक चन्द्र, तारायें रहते हैं तब तक कीर्ति युक्त होता हैं और राजपूज्य, महाभोगी, दाता, बन्धुजनों का प्रिय, परोपकारी, धर्मात्मा, गुणी तथा सुन्दर यश से युक्त होता हैं।

पर्वतयोग

सप्तमे चाऽष्टमे शुद्धे शुभग्रहयुतेऽथवा।

केन्द्रेषु शुभयुक्तेषु योगः पर्वतसंज्ञकः।।

भाग्यवान् पर्वतोत्पन्नः वाग्मी दाता च शास्त्रवित्।

हास्यप्रियो यशस्वी च तेजस्वी पुरनायकः।।

सप्तम-अष्टम भाव में कोई ग्रह विद्यमान न हो अथवा केवल शुभ ग्रह हो तथा समस्त शुभ ग्रह केन्द्र में बैठे हों तो पर्वत नामक योग होता हैं। पर्वत योग में समुत्पन्न जातक भाग्यवान, वक्ता, शास्त्रज्ञाता, हास्यप्रिय, यशस्वी, तेजवान और नगराधिपति होता हैं।

काहल योग

सुखेशेज्यौ मिथः केन्द्रगतौ बलिनि लग्नपे।

काहलो वा स्वभोच्चस्थे सुखेशे कर्मपान्विते।।9।।

ओजस्वी साहसी धूर्तश्चतुरङगबलान्वितः।

यत्किंचद् ग्रामनाथश्च काहले जायते नरः।।10।।

लग्नाधिपति बलयुक्त हो, सुखेश और गुरू परस्पर केन्द्रगत हों अथवा सुखेश और कर्मेश एक साथ होकर अपने उच्च, स्वराशि में हो तो दोनों तरह से काहल नामक योग होता हैं। इस योग में उत्पन्न जातक ओजस्वी, साहसी, धर्त, चतुर, बली और कुछ गाँवों का अधिपति हाता हैं।

चामरयोग

लग्नेशे तुङगे केन्द्रे गुरुदृष्टे तु चामरः।
शुभद्वये विलग्ने वा नवमे दशमे मदे।।

लग्नाधिपति अपने उच्च का होकर केन्द्र में हो और उस पर गुरू की दृष्टि हो अथवा दो शुभ ग्रह लग्न, नवम, दशम या सप्तम में बैठे हों तो चामर नामक योग होता हैं।।

चामरयोग का फल

राजा वा राजपूज्यो वा चिरजीवी च पण्डितः।
वाग्मी सर्वकलाविद्वा चामरे जायते जनः।।

चामर योग में उत्पन्न मनुष्य राजा या राजपूज्य, दीर्घायु, पण्डित, वक्ता और समस्त कलाओं का ज्ञाता होता हैं।

शङखयोग

सबले लग्नपे पुत्र-षष्ठपौ केन्द्रेगौ मिथः।
शङखो वा लग्नकर्मेशौ चरे बलिनि भाग्यपे।।
धनस्त्रीपुत्रसंयुक्तो दयालुः पुण्यवान् सुधीः।
पुण्यकर्मा चिरंजीवी शङखयोगोद्भवो नरः।

लग्नेश बलवान हो और पंचमेश तथा षष्ठेश परस्पर केन्द्र में स्थित हों अथवा भाग्येश बलयुक्त हो और लग्नेश तथा दशमेश चर राशि में बैठे हों तो शङख नामक योग होता हैं। इस योग में उत्पन्न जातक धन, स्त्री, पुत्र से युक्त, दयालु, पुण्यात्मा, बुद्धिमान पुण्यकर्मी और चिरंजीवी होता हैं।

भेरी योग

सबले भाग्यपे भेरी खगैः स्वान्त्योदयास्तगैः।
सबले भाग्यपे वाऽसौ केन्द्रे शुक्रेज्यलग्नपैः।।

भाग्येश बली हो और 2, 12, 1, 7 भावों में सभी ग्रह बैठे हों अथवा भाग्येश बली हो और शुक्र, गुरू तथा लग्नाधिपति केन्द्र में हो तो भेरी नामक योग होता हैं।

भेरी योग का फल

धनस्त्रीपुत्रसंयुक्तो भूपः कीर्तिगुणान्वितः।

अचारवान् सुखी भोगी भेरीयोगे जनो भवेत्।।

भेरी योग में उत्पन्न जातक धन, स्त्री एवं पुत्र से युक्त, राजा, यशस्वी, गुणी, आचारवान्, सुखी और भोगी होता हैं।

मृदंगयोग

सबले लग्नपे खेटाः केन्द्रे कोणे स्वभोच्चगाः।

मृदङ्गयोगो जातोऽत्र भूपो वा तत्समः सुखी।।

लग्नेश बलयुक्त हो और अपने उच्च या स्वराशि में हो तथा अन्य ग्रह केन्द्र या त्रिकोण में हो तो मृदङ्ग नामक योग होता हैं। इसमें उत्पन्न जातक सुखी एवं राजा या राजसदृश होता हैं।

श्रीनाथयोग

कामेशे कर्मगे तुङ्गे कर्मेशे भाग्यपान्विते।

योगः श्रीनाथसंज्ञोऽत्र जातः शक्रसमो नृपः।।

सप्तमेश दशम में स्वोच्च का होकर बैठा हो और कर्मेश नवमेश से युक्त हो तो श्रीनाथ नामक योग होता हैं। इसमें उत्पन्न जातक इन्द्र के तुल्य राजा होता हैं।

शारदयोग

कर्मेशे सुतगे केन्द्रे बुधेऽर्के सबले स्वभे।

चन्द्रात् कोणे गुरौ ज्ञे वा कुजे लाभे च शारदः।।

धनस्त्रीपुत्रसंयुक्तः सुखी विद्वान् नृपप्रियः।

तपस्वी धर्मसंयुक्तः शारदे जायते जनः।।

कर्मेश पंचम भाव में हों, बुध केन्द्र में हो और बलयुक्त सुर्य स्वराशि (5) में हो, अथवा चन्द्रमा से कोण (5, 9) में गुरू या बुध हो, आय में भौम हो तो शारद नामक योग होता हैं। इस योग में उत्पन्न जातक धन, स्त्री, पुत्रादि से युक्त, सुखी, विद्वान, राजा का प्रिय, तपस्वी और धार्मिक होता हैं।

मत्स्ययोग

धर्मलग्नगते सौम्ये पंचमे सदसद्युते।

पापे च चतुरस्त्रस्थे योगोऽयं मत्स्यसंज्ञकः।।

धर्म तथा लग्न में शुभ ग्रह बैठे हों, पंचम में शुभ, अशुभ ग्रह बैठे हों, 4, 8 भाव में पाप ग्रह बैठे हों तो मत्स्य नामक योग होता हैं।

मत्स्ययोग का फल

कालज्ञः करुणामूर्तिर्गुणधीबलरूपवान्।

यशोविद्यातपस्वी च मत्स्ययोगे हि जायते।।

मत्स्य योग में उत्पन्न जातक काल को जानने वाला, करूणा का प्रतिरूप, गुरू, बल, रूप, यश, विद्या और तपस्या से युक्त होता हैं।।22।।

कूर्मयोग

पुत्रारिमदगाः सौम्याः स्वभोच्चसुहृदंशगाः।
त्रिलाभोदयगाः पापाः कूर्मयोगः स्वभोच्चगाः।।
कूर्मयोगे जनो भूपो धीरो धर्मगुणान्वितः।
कीर्तिमानुपकारी च सुखी मानवनायकः।।

शुभ ग्रह 5, 6, 7 में हो और पाप ग्रह 3, 11, 1 भाव में, अपने-अपने उच्च, अपनी राशि में बैठे हों तो कूर्मयोग होता हैं। कूर्म योग में उत्पन्न मानव राजा, धीर, धर्मात्मा, गुणी, कीर्तियुक्त, उपकरी, सूखी और मनुष्यों का नायक (नेता) होता हैं।

खड्ग योग

भाग्येशे धनभावस्थे धनेशे भाग्यभावगे।
लग्नेशे केन्द्रकोणस्थे खड्गयोगः स कथ्यते।।
खड्गयोगे समुत्पन्नो धनभाग्यसुखान्वितः।
शास्त्रज्ञो बुद्धिवीर्याव्यः कृतज्ञः कुशलो नरः।।

भाग्येश धनाभाव में हो और धनेश नवम भाव में हो तथा लग्नेश केन्द्र-त्रिकोण में बैठा हो, तो खड्गयोग होता है। खड्ग योग में उत्पनन जातक धन, भाग्य-सुखों से युक्त शास्त्रज्ञाता, बुद्धि तथा बल से युक्त, कृतज्ञ और कुशल मानव होता हैं।

लक्ष्मी योग

केन्द्रे मूलत्रिकोणस्थे भाग्येशे वा स्वभोच्चगे।
लग्नाधिपे बलाढये च लक्ष्मीयोगः प्रकीत्र्यते।।
सुरूपो गुणवान् भूपो बहुपुत्रधनान्वितः।
यशस्वी धर्मसम्पन्नो लक्ष्मीयोगे जनो भवेत्।।

लग्नेश बलवान हो और भाग्येश अपने मूल त्रिकोण या अपने उच्चे अथवा स्वगृह में होकर केन्द्र में बैठा हो तो लक्ष्मी नामक योग होता हैं। इस योग में उत्पन्न जातक सुन्दर, गुणी, राजा, बहुत पुत्र एवं

धन से समन्वित, यशस्वी और धर्मात्मा होता हैं।

कुसुमयोग

लग्ने स्थिरे भृगौ केन्द्रे चन्द्रे कोणे शुभान्विते।
मानस्थानगते सौरे योगोऽयं कुसुमाभिधः।।
भूपो वा भूपतुल्यो वा दाता भोगी सुखी जनः।
कुलमुख्यो गुणी विद्वान् जायते कुसुमाह्वये।।

स्थिर राशि का लग्न हो, शुक्र केन्द्र में और चन्द्रमा त्रिकोण में शुभ ग्रह से युक्त हो और दशम भाव में शनि बैठा हो तो कुसुम योग होता हैं। इसमें उत्पन्न मानव राजा या राजा के समान, दाता, भोगी, सुखी, वंश मे उत्तम, गुणी और विद्वान होता हैं।

कलानिधियोग

द्वितीये पंचमे जीवे बुधशुक्रयुतेक्षिते।
क्षेत्रे तयोर्वा सम्प्राप्ते योगः स च कलानिधिः।
कलानिधिसमुत्पन्नो गुणवान् भूपवन्दितः।
रोगहीनः सुखी जातो धनविद्यासमन्वितः।।

द्वितीय या पंचम भाव में गुरू हो और बुध शुक्र के युत या दृष्ट हो अथवा बुध शुक्र के क्षेत्र में स्थित हो तो कलानिधि योग होता हैं। इस योग में जन्म लेने वाले मनुष्य गुणी, राजपूज्य, नीरोग, सुखी, धनाढय और विद्या से सम्पन्न होते हैं।

कल्पद्रुमयोग

लग्नेश-तद्गतर्क्षेश-तद्गर्क्षेश-तंदशपाः
केन्द्रे कोणे स्वतुङेग वा योगः कल्पदुरमो मतः।।
सर्वैश्वर्ययुतो भूपो धर्मात्मा बलसंयुतः।
युद्धप्रियो दयालुश्च पारिजाते नरो भवेत्।।

लग्नाधिप तथा लग्नेशनिष्ठ राशि का स्वामी, पुनः वह जिस राशि में हो उसका स्वामी और उसका नवमांशपति-ये सभी केन्द्र-त्रिकोण में अथवा अपने-अपने उच्च में बैठे हों तो कल्पद्रुम नामक योग होता हैं। इस योग में उत्पन्न जातक समस्त सम्पत्ति से युक्त, राजा, धर्मात्मा, बली, समरप्रिय और दयालु होता हैं।

हरि-हर ब्रह्म-योग

स्वांन्त्याष्टस्थैद्र्वितीयेशाद् हरियोगः शुभग्रहैः।

कामेशाद् बन्धुधर्माष्टस्थितैः सौम्यैर्हराभिधः।।
लग्नेशाद् बन्धुकर्माय-स्थितैब्र्रह्महृयः स्मृतः।
एषु जातः सुखी विद्वान् धनपुत्रादिसंयुतः।।

धनाधिप से 2, 8, 12 में शुभ ग्रह हों तो हरि योग होता हैं। सप्तमेश से 4, 9, 8 स्थान में शुभ ग्रह बैठे हों तो हर योग होता हैं। लग्नेश से 4, 10, 11 भाव में शुभ ग्रह हो तो ब्रह्म योग होता हैं। पूर्वाक्त तीनों योगों में उत्पन्न जातक सुखी, विद्वान एवं धन-पुत्रादि से परिपूर्ण होता हैं।

लग्नाधियोग

लग्नान्मदाष्टगैः सौम्यैः पापदृग्योगवर्जितैः।
योगो लग्नाधियोगोऽस्मिन् महात्मा शास्त्रवित्सुखी।।

लग्न से 7, 8 भाव में शुभ ग्रह बैठे हों और उन पर पाप ग्रह की दृष्टि न हो तथा युति भी न हो तो लग्नाधि योग होता हैं। इसमें जन्म लेने वाला मनुष्य महात्मा, शास्त्रज्ञाता और सुखी होता हैं।

पारिजातादि वर्गस्थित लग्नेश फल

लग्नपे पारिजातस्थे सुखी वर्गोत्तमे ह्यरुक्।
गोपुरे धनधान्याढया भूपः सिंहासने स्थिते।।
विद्वान् पारावते श्रीमान् देवलोके सवाहनः।
ऐरावतस्थिते जातो विख्यातो भूपवन्दितः।।

लग्नेश पारिजातादि योग में बैठे हों तो जातक सुखी, अपने वर्गोत्तम में हों तो नीरोग, गोपुरांश में रहने पर धन-धान्य से परिपूर्ण, सिंहासन में हो तो राजा, पारावत में लग्नेश हो तो विद्वान, देवलोक में हो तो श्रीमान् एवं ऐरावतांश में लग्नेश हो तो विख्यात और राजमान्य होता हैं।

बोध प्रश्न –

1. वृहज्जातकम् के लेखक कौन है।
   क.वराहमिहिर ख. कल्याण वर्मा ग. भास्कर घ. कमलाकर
2. निम्न में सुनफा योग किस ग्रह से बनता है।
   क. सूर्य ख. चन्द्रमा ग. भौम घ. गुरु
3. सूर्य को छोड़कर अन्य पंचतारा ग्रहों में कोई एक यदि चन्द्रमा से १२ वें स्थान में कौन सा योग बनता है।
   क. अनफा ख.सुनफा ग. दुरूधरा घ. केमद्रुम
4. धनाधिप से 2, 8, 12 में शुभ ग्रह हो तो योग होता हैं।

क. हरिहर ख. हर ग. कमल घ. चामर

5. शुभ ग्रह 5, 6, 7 में हो और पाप ग्रह 3, 11, 1 भाव में, अपने-अपने उच्च, अपनी राशि में बैठे हों तो कौन सा योग होता हैं।

क. राजयोग ख. केमद्रुम योग ग. कूर्म योग घ. हरि योग

6. सुनफा योग में उत्पन्न जातक कैसा होता है।

क. राजा ख. रंक ग. दानवीर घ. धार्मिक

7. वृहत्पराशर होरा शास्त्र के प्रणेता है।

क. वराहमिहिर ख. पराशर मुनि ग. कमलकार घ. भास्कर

3.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि चन्द्रादि योग से तात्पर्य है – चन्द्रमा ग्रह द्वारा बनने वाला योग। प्राय: फलित ज्योतिष के समस्त ग्रन्थों में चन्द्रादि योग का उल्लेख हमें प्राप्त होता है। सुनफा, गजकेसरी आदि अनेक योग इसके उदाहरण है। चन्द्रमा को ग्रहों में सूर्य के समान ही राजा कहा गया है। जैसा कि वराहमिहिर कहते है- राजा रवि: शशिधरश्च...0। चन्द्रमा मन का कारक ग्रह है। अत: जातक के मन को सबसे ज्यादा चन्द्रमा ही प्रभावित करता है। जिसके जन्मकाल में सूर्य के स्थान से चन्द्रमा केन्द्र १,४,७,१० में स्थित हो तो उसके शील,धन, शास्त्रज्ञान, बुद्धि और चातुर्य ये अधम होते हैं अर्थात् नहीं होते हैं। पणफर २,५,८,१ में स्थित हो तो सम अर्थात् न कम न अधिक और आपोक्लिम ३,६,९,१२ में स्थित हो तो वरिष्ठ अर्थात् उत्तम होते हैं। जिसका जन्म दिन में हुआ हो और चन्द्रमा जिस किसी राशि में अपने या अधिमित्र के नवमांश में स्थित हो तथा उसे वृहस्पति देखता हो अथवा रात्रि में जन्म हुआ हो और चन्द्र की उपरोक्त स्थिति हो तथा उसे शुक्र देखता हो तो वह जातक धनवान तथा सुखी होता है।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

चन्द्रादि योग – चन्द्रमा आदि ग्रहों बनने वाला योग।

आर – मंगल

सुनफा – चन्द्रमा से बनने वाला योग

केन्द्र – १,४,७,१० भाव को केन्द्र कहते है।

आपोक्लिम – ३,६,९,१२

केन्द्र – १,४,७,१० स्थान को केन्द्र कहते है।

हरिहर योग – धनाधिप से 2, 8, 12 में शुभ ग्रह हों तो हरि योग होता हैं।

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क
2. ख
3. क
4. क
5. ग
6. क
7. ख

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वृहज्जातकम् - चन्द्राध्यायः।
2. वृहत्पराशरहोराशास्त्र – चन्द्रादियोगाध्यायः।

3.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. फलदीपिका – मूल लेखक – आचार्य मन्त्रेश्वर। टीकाकार – गोपेश ओझा।
2. सारावली – मूल लेखक – कल्याणवर्मा। टीकाकार- मुरलीधर चतुर्वेदी।
3. वृहज्जातकम् – मूल लेखक – वराहमिहिर, टीकाकार- आचार्य सत्येन्द्र मिश्र।
4. लघुजातकम् – मूल लेखक – वराहमिहिर, टीकाकार – कमलाकान्त पाण्डेय।

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. चन्द्रादि योग से क्या तात्पर्य है।
2. चन्द्रमा से बनने वाले प्रमुख योगों का वर्णन कीजिये।
3. सुनफा, अनफा, दुरूधरा योग एवं उसके फल लिखिये।
4. केमद्रुम योग का विस्तृत वर्णन कीजिये।
5. कूर्म, खड्ग, लक्ष्मी, कुसुम, कलानिधि एवं हरिहर योग का वर्णन कीजिये।

इकाई - 4 दारिद्रय योग

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 दारिद्रय योग परिचय
4.3.1 विविध प्रकार के दारिद्रय योग विचार
4.3.2 अन्य विचार
4.4 सारांश
4.5 पारिभाषिक शब्दावली
4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.8 सहायक पाठ्यसामग्री
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -602 के प्रथम खण्ड की चतुर्थ इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – दारिद्रय योग। इससे पूर्व आपने चन्द्रादि योग से जुड़े विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में 'दारिद्रय योग' के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

'दारिद्रय योग' से तात्पर्य दरिद्रता अथवा निर्धनता से है। कुण्डली में कैसे ग्रहों की स्थितियों के कारण यह योग उत्पन्न होता है। इस योग के होने से मानव जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है। इन सभी विषयों का आप इस इकाई में अध्ययन करेंगे।

आइए इस इकाई में हम लोग 'दारिद्रय योग' के बारे में उसकी विभिन्न स्थितियों एवं शुभाशुभ फलों जानने का प्रयास करते है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- दरिद्र योग को परिभाषित कर सकेंगे।
- विभिन्न प्रकार के दारिद्रय योग से परिचित हो जायेंगे।
- फलित ग्रन्थों में वर्णित दरिद्र योग को समझा सकेंगे।
- दारिद्रय योग के प्रभाव को समझ लेंगे।
- फलादेश कथन में इस योग को प्रतिपादित करने में समर्थ हो सकेंगे।

4.3 दारिद्रय योग

सर्वविदित है कि मानव जीवन सदैव खुशियों से भरा नहीं होता। कभी सुख तो कभी दु:ख और कभी-कभी व्यक्ति किंकर्तव्यविमूढ भी हो जाता है। राजा या दरिद्र होना मानव का उसके कर्मफल पर आधारित है। ज्योतिष शास्त्र में ग्रह योग के आधार पर यह ऋषियों ने अनुसंधान कर पता लगाया है कि कैसे कोई जातक ग्रह के प्रभाव तथा उसके दशादि में दरिद्रता को प्राप्त करता है। विविध ग्रन्थों के आधार पर, ऋषियों एवं आचार्यों के कथनानुसार इस इकाई में आप सभी के ज्ञानार्थ दारिद्रय योग का उल्लेख किया जा रहा है।

दारिद्रय योग का अर्थ है- दरिद्रता या निर्धनता। इस योग के प्रभाव से जातक की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय एवं कमजोर हो जाती है, जिसके फलस्वरूप वह अपने व अपने परिवार का पालन करने में समर्थ नहीं रह जाता है। अतएव आइए सर्वप्रथम वृहत्पराशरहोराशास्त्र के प्रणेता

पराशर मुनि के वचनों का अध्ययन करते हैं। मैत्रेय के पूछे जाने पर आचार्य पराशर जी ने दारिद्रय योग का वर्णन करते हुए इस प्रकार कहा है कि -

मूल श्लोकः -

पराशर उवाच

लग्नेशे च व्ययस्थाने व्ययेशे लग्नमागते।
मारकेशयुते दृष्टे निर्धनो जायते नरः।।
लग्नेशे षष्ठभावस्थे षष्ठेशे लग्नमागते।
मारकेशन युगदृष्टे धनहीनः प्रजायते।।
लग्नेन्दू केतुसंयुक्तौ लग्नपे निधनं गते।
मारकेशयुते दृष्टे जातो वै निर्धनो भवेत्।
षष्ठाष्टमव्ययगते लग्नपे पापसंयुते।
धनेशे रिपुभे नीचे राजवंश्योऽपि निर्धनः।।
त्रिकेशेन समायुक्ते पापदृष्टे विलग्नपे।
शनियुक्तेऽथवा सौम्यैरदृष्टे निर्धनो नरः।।
मन्त्रेशो धर्मनाथश्च क्रमात् षष्ठव्ययस्थितौ।
दृष्टौ चेन्मारकेशेन निर्धनो जायते नरः।।

श्लोक का अर्थ है कि पराशर जी ने कहा – यदि लग्नेश व्यय भाव में हो और व्ययेश लग्न में हो तथा मारकेश से युत या दृष्ट हो तो जातक निर्धन होता हैं। लग्नेश षष्ठ में हो और षष्ठेश लग्न में हो तथा मारकेश से युत या दृष्ट हो तो जातक धनहीन होता हैं। लग्न या चन्द्रमा केतु से युत हो और लग्नेश अष्टम में हो तथा मारकेश से युत या दृष्ट हो तो जातक निर्धन होता हैं। लग्नेश 6, 8, 12 भाव में हो; पाप ग्रह से युक्त हो तथा धनेश अपनी नीच राशि का हो या शत्रुभाव में हो तो जातक राजवंश में उत्पन्न होने पर भी निर्धन होता हैं। त्रिक (6, 8, 12) स्थान के स्वामी से युक्त तथा शनि से युक्त लग्नेश हो, पाप ग्रह से दृष्ट एवं शुभ ग्रह से अदृष्ट हो तो जातक निर्धन होता हैं। पंचमेश षष्ठ में एवं नवमेश व्यय भाव में हो और मारकेश से दृष्ट हो तो जातक निर्धन होता हैं।

पापग्रहे लग्नगते राज्यधर्माधिपौ विना।
मारकेशयुते दृष्टे जातः स्यान्निर्धनो भवेत्।।
त्रिकेशा यत्र भावस्था तद्भावेशास्त्रिकस्थिताः।
पापदृष्टयुता बालो दुःखाक्रान्तश्च निर्धनः।।

चन्द्राक्रान्तनवांशेशो मारकेशयुतो यदि।
मारकस्थानगो वाऽपि जातोऽत्र निर्धनो नरः।।
लग्नेशलग्नभागेशौ रिष्फरन्ध्रारिगौ यदि।
मारकेशयुतौ दृष्टौ जातोऽसौ निर्धनो नरः।।
शुभस्थानगताः पापाः पापस्थानगताः शुभाः।
निर्धनो जायते बालो भोजनेन प्रपीडितः।।
कोणेशदृष्टिहीना ये त्रिकेशैः संयुता ग्रहाः।
ते सर्वे स्वदशाकाले धनहानिकराः स्मृताः।।
कारकाद् वा विलग्नाद् वा रन्ध्रे रिष्फे द्विजोत्तम!।
कारकाङ्गपयोर्दृष्टया धनहीनः प्रजायते।।

यदि दशमेश और नवमेश को छोड़कर अन्य पाप ग्रह लग्नगत हों तथा मारकेश से युक्त या दृष्ट हों तो जातक निर्धन होता हैं। त्रिक (6, 8, 12) स्थान के स्वामी जिस भाव में हों और उन भावों के स्वामी 6, 8, 12 भाव में बैठे हों तथा पाप ग्रह से युत या दृष्ट हो तो जातक दुःखों से आक्रान्त एवं निर्धन होता हैं। चन्द्राक्रान्त नवमांश का स्वामी यदि मारकेश से युत या मारक स्थानगत हो तो जातक निर्धन होता हैं। लग्नेश तथा लग्न का नवंमाशपति दोनों 6, 8, 12 में मारकेश के साथ हो या दृष्ट हो तो जातक निर्धन होता हैं। शुभग्रह की राशि में पाप ग्रह और पाप ग्रह की राशि में शुभ ग्रह बैठे हों तो जातक भोजन से भी पीड़ित रहता हैं और निर्धन होता हैं। जो ग्रह त्रिकोणेश की दृष्टि से हीन हो और 6, 8, 12 के स्वामी से युक्त हो उस ग्रह की दशा या अन्तर्दशा-काल में धन की हानि होती हैं। आत्मकारक से या लग्न से 8, 12 भाव में आत्मकारक और लग्नेश की दृष्टि हो तो भी जातक धनहीन (दरिद्र) होता हैं।।

कारकेशो व्ययं स्वस्मात् लग्नेशो लग्नतो व्ययम्।
वीक्षते चेत्तदा बालो व्ययशीलो भवेद् ध्रुवम्।।

आत्मकारक राशि का स्वामी कारक से द्वादश भाव को एवं लग्नेश लग्न से द्वादश भाव को देखते हों तो जातक अधिक खर्च करने वाला हेाता हैं।।

दारिद्रयभंग योग -

अथ दारिद्रययोगांस्तु कथयामि सभङ्गकान्।
धनसंस्थौ तु भौमार्की कथितौ धननाशकौ।।
बुधेक्षितौ महावित्तं कुरुते नात्र संशयः।

निःस्वतां कुरुते तत्र रविर्नित्यं यमेक्षितः।।
महाधनयुतं ख्यातं शन्यदृष्टः करोत्यसौ।
शनिश्चापि रवेर्दृष्टया फलमेवं प्रयच्छति।।

अर्थात् यदि धनभाव में भौम-शनि हों तो धननाशक योग होता हैं; परन्तु यदि उन पर बुध की दृष्टि हो तो जातक महाधनी होता हैं-इसमें कोई सन्देह नहीं हैं। धनभाव में रवि हो और उस पर शनि की दृष्टि हो तो जातक निर्धन होता है; किन्तु यदि शनि की दृष्टि नहीं हो तो जातक महाधनी होता हैं। धनभाव में शनि हो और उस पर सूर्य की दृष्टि रहे तो जातक निर्धन होता हैं, परन्तु रवि की दृष्टि न हो तो जातक महाधनी होता हैं।

जातकपारिजात के अनुसार दरिद्र योग –

भाग्येश्वरादतिबलो निधनेश्वरो वा
लग्नाधिपस्त्रिदशनाथगुरुर्यदि स्यात्।।
केन्द्राद्रहिर्दिनकरस्य कराभितप्तो।
लाभाधिपो यदि विहीनबलो दरिद्रः।।

अर्थात् अष्टम भाव का स्वामी यदि भाग्याधिपति से बलवान हो अथवा लग्न, तृतीय या दशम भाव का स्वामी वृहस्पति हो और केन्द्रेतर भाव में सूर्य सान्निध्य से निस्तेज एवं निर्बल होकर स्थित हो तथा एकादश भाव का स्वामी बलहीन हो तो जातक दरिद्र होता है।

लाभारिव्ययरन्ध्रपुत्रगृहगा जीवारमन्देन्दुजा।
नीचस्थानगता यदा रविकरच्छन्नास्तदा भिक्षुकः।।
भाग्यस्थानगतो दिनेशतनयः सौम्येतरैरीक्षितो
लग्नस्थः शशिनन्दनो रवियुतो नीचांशगो भिक्षुकः।।

यदि वृहस्पति, भौम, शनि और बुध लग्न से ११,६,१२,८,५ वें भावों में स्थित हो तथा अपनी-2 नीच राशि में हो अथवा सूर्यरश्मि से निस्तेज हों तो जातक भिक्षुक होता है। यदि शनि भाग्यस्थान में स्थित हो तथा उस पर किसी पाप ग्रह की दृष्टि हो, सूर्य के साथ बुध अपनी नीच राशि के नवमांश में लग्नस्थ हो तो जातक भिक्षुक होता है।

जीवज्ञशुक्ररविनन्दनभूमिपुत्रा
रन्ध्रारिरिः फसुतकर्मगता यदि स्यात्।
लग्नेश्वरादतिबली व्ययभावनाथो
नीचस्थितो रविकराभिहतो दरिद्रः।।

वृहस्पति, बुध, शुक्र शनि और मंगल यदि ८,६,१२,५,१० भावों में स्थित हो तथा रि:फेश १२ लग्नेश से बलवान हो और अपनी नीचराशि में सूर्यरश्मियों से आहत होकर निस्तेज हो तो इस योग में उत्पन्न जातक दरिद्र होता है।

लग्ने चरे चरनांशगतेऽसितेन।
दृष्टे च नीचगुरुणा यदि भिक्षुक: स्यात्।
जातो विनाऽमरपुरोहितलग्नराशिं
जीवे रिपुव्ययगते तु भवेद्दरिद्र:।।

अर्थात् लग्न में चरराशि और चरराशि का नवांश हो और शनि तथा नीचराशि के वृहस्पति से दृष्ट हो तो जातक भिक्षुक होता है। जन्मकाल में गुरु स्वराशि से भिन्न राशि का होकर यदि ६,१२ में हो तो जातक दरिद्र होता है।

उदाहरण –

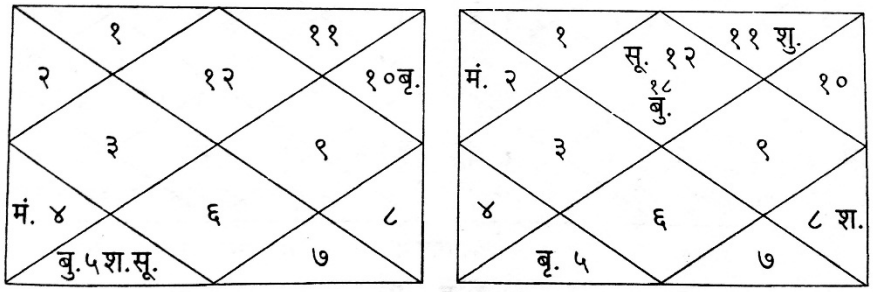

दरिद्रयोग

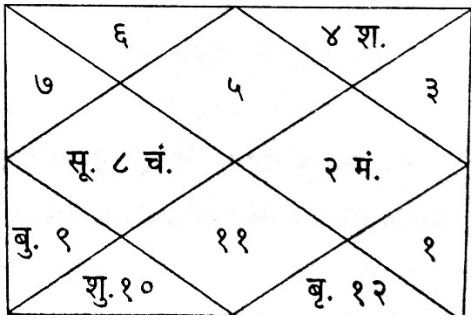

दरिद्र योग

फलदीपिका ग्रन्थ के अनुसार दारिद्रय योग –

दुस्थैर्भावगृहेश्वरैरशुभसंयुक्तेक्षितैर्वा क्रमा
द्भावै: स्युस्त्ववयोगनि: स्वमृतय: प्रोक्ता: कुहू: पामर:।
हर्षो दुष्कृति रित्यथापि सरलो निर्भाग्यदुर्योगकौ
योगा द्वादश ते दरिद्रविमले प्रोक्ता विपश्चिज्जनै:।।

श्लोक का अर्थ है कि यदि लग्न या लग्नेश अशुभ ग्रह से युत या देखा जाता हो और लग्नेश दु:स्थान में हो तो अवयोग होता है। जो अवयोग में जन्म लेता है उसकी स्थिति बहुत चंचल होती है। ऐसा व्यक्ति असज्जनों के साथ रहता है, न उसका शरीर अच्छा रहता है, न उसका चरित्र अच्छा होता है। जातक स्वल्पायु और अप्रसिद्ध रहता है, और **घोर दरिद्रता** तथा अपमान को प्राप्त करता है। फलदीपिका के रचयिता मन्त्रेश्वर जी का कथन है कि लग्न और लग्नेश के बलवान होने से समस्त कुण्डली का सुधार हो जाता है, अन्यथा कुण्डली निरर्थक हो जाती है।

अप्रसिद्धिरतिदुसहदैन्यं स्वल्पमायुरवमानमसद्धि:।
संयुत: कुचरित: कुतनु: स्याच्चंचलस्थितिरिहाप्यवयोगे।।
सुवचनशून्यो विफलकुटुम्ब: कुजनसमाज: कदशनचक्षु:।
मतिसुतविद्याविभवविहीनो रिपुहृतवित्त: प्रभवति नि:स्वे।।

यदि दूसरे गृह का स्वामी पापग्रह से युत अथवा देखा जाता हो या ६,८,१२ इन तीनों स्थानों में से कहीं हो और दूसरे घर में पापग्रह बैठे हों या पापग्रह दूसरे भाव को देखते हो तो 'नि:स्वयोग' होता है। जिसके पास अपना कुछ नहीं होता अर्थात् वह **दरिद्र** होता है। यहाँ नि:स्व का अर्थ दरिद्र है। ऐसे जातक के दाँत और नेत्र खराब होते है। वह कटुवाणी बोलता है। उसका कुटुम्ब भी विफल होता है। द्वितीय भाव से विचारणीय समस्त विषयों धनादि का उसे सदैव अभाव रहता है।

अरिपरिभूत: सहजविहीनो
मनसि विलज्जो हतबलवित्त:।
अनुचितकर्मश्रमपरिखिन्नो
विकृतिगुण: स्यादिति मृतियोगे।।

यदि तृतीय स्थान का स्वामी दु:स्थान में स्थित हो और तृतीय भवन और तृतीयेश अशुभ ग्रहों से युत या देखा जाता हो तो **'मृति'** योग होता है। ऐसे योग में उत्पन्न मनुष्य शुत्रुओं से पराजित, अनुचित कर्म करने वाला, परिश्रम से खिन्न और निर्लज्ज होता है। उसके बल और धन का हरण हो जाता है और उसे भाई-बहन का सुख भी नहीं मिलता। ऐसा व्यक्ति अनियंत्रित होता है।

मातृवाहनसुहृत्सुखभूषाबन्धुभिर्विरहित: स्थितिशून्य:।
स्थानमाश्रितमनेन हतं स्यात् कुस्त्रियामभिरत: कुहुयोगे।।

अर्थात् यदि लग्न से चतुर्थ गृह या चतुर्थेश अशुभ ग्रहों से युत या देखा जाता हो और चतुर्थेश ६,८,१२ इन स्थानों में से किसी में हो, तो कुहूयोग होता है। इस योग में उत्पन्न जातक को माता, वाहन, मित्र, आभूषण तथा बन्धुओं का सुख प्राप्त नहीं होता। चतुर्थ गृह सुख स्थान कहलाता है और इस गृह के खराब हो जाने से मनुष्य सुखहीन होता है। ऐसे व्यक्ति को कहीं आश्रय नहीं मिलता। कोई न कोई संकट सदैव बना रहता है।

विशेषत: यहाँ टिकाकार का कथन है कि शनि यदि चौथे घर में हो और चौथे घर का स्वामी भी अशुभ हो तो बुढ़ापा बहुत दरिद्रता में व्यतीत होती है। नीचे दी गयी कुण्डली में जातक का युवावस्था में तो राज योग रहा किन्तु बुढ़ापा अत्यन्त दरिद्रता में व्यतीत हुआ।

उदाहरण –

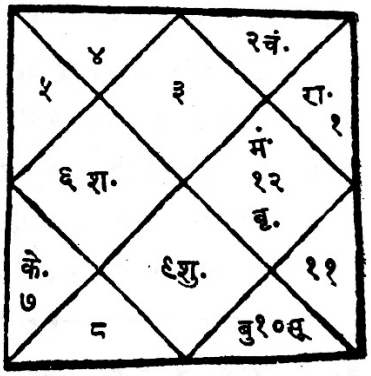

पित्रार्जितक्षेत्रगहादिनाशकृत्
साधून गुरुन्निन्दति धर्मवर्जित:।
प्रत्नातिजीर्णाम्बरधृच्च दुर्गतो
निर्भाग्ययोगे बहुदु:खभाजनम्।।

यदि कुण्डली के नवें स्थान का स्वामी लग्न से ६,८,१२ वें भाव में हो और नवमेश तथा नवम गृह पर अशुभ ग्रहों की दृष्टि हो या वहाँ अुशभ ग्रह बैठे हों तो **'निर्भाग्य'** योग होता है। जो व्यक्ति इस योग में पैदा होता है वह बहुत दु:ख उठाने वाला, पुराने कपड़े पहनने वाला तथा दुर्गति को प्राप्त करता है। नवम भाव धर्म भाव है यह बिगड़ने से मनुष्य साधुओं और गुरुओं की निन्दा करता है। ऐसे व्यक्ति को जो कुछ पैत्रिक सम्पत्ति प्राप्त होती वह भी सब नष्ट हो जाती है और वह परम दरिद्रता को प्राप्त

करता है।

ऋणग्रस्त उग्रो दरिद्राग्रगण्यो
भवेत्कर्णरोगी च सौभ्रात्रहीन:।
अकाग्रप्रवृत्तो रसाभासवादी
परप्रेष्यक: स्याद् दरिद्राख्ययोगे।।

अर्थात् यदि जन्मकुण्डली में ११ वें भाव का स्वामी दु:स्थान में हो तो **दारिद्रय योग** होता है। भावेश दु:स्थान में हो और वह अशुभ ग्रहों से देखा जाता हो तो विविध योग होते है। किन्तु इसका अपवाद है कि यदि भाव में सर्वत्र अशुभ ग्रह होने से अशुभ योग बने तो एकादश भाव में पापग्रह बैठने से दारिद्रय योग बनता चाहिये? किन्तु ज्योतिषियों का आप्त वाक्य है कि लाभे सर्वे प्रशस्त:। सारावली में भी कल्याण वर्मा ने लिखा है कि –

लग्नस्था: सुखसंस्था: दशमस्थापि कारका: सर्वे।
एकादशमपि केचित् वांछन्ति न तन्मतं मुनीन्द्राणाम्।।

अत: इसका अर्थ है कि यदि एकादशेश त्रिक ६,८,१२ में हो या अशुभ ग्रहों से युत हो अथवा देखे जाते हो तो दारिद्रय योग होता है। जिसकी जन्मकुण्डली में यह योग हो वह कर्जदार, अत्यन्त दरिद्र, कान की बीमारी से पीड़ित, अच्छे भाईयों से हीन, दुष्कर्म करने वाला, अप्रशस्त वचन बोलने वाला, दूसरे का नौकर और दु:ख उठाने वाला होता है।

बोध प्रश्न –

1. फलदीपिका के लेखक कौन है?
   क.मन्त्रेश्वर ख. कल्याण वर्मा ग. भास्कर घ. कमलाकर
2. यदि लग्नेश व्यय भाव में हो और व्ययेश लग्न में हो तथा मारकेश से युत या दृष्ट हो तो जातक क्या होता हैं?
   क. सुखी ख. दु:खी ग. निर्धन घ. राजा
3. निम्न में त्रिक् स्थान कौन सा है।?
   क. १,४,७ ख.६,८,१२ ग. ४,९,१२ घ. २,५,८
4. यदि धनभाव में भौम-शनि हों तो कौन सा योग होता है?
   क. धनवृद्धि योग ख. धननाशक योग ग. राज योग घ. कोई नहीं
5. यदि कुण्डली के नवें स्थान का स्वामी लग्न से ६,८,१२ वें भाव में हो और नवमेश तथा नवम गृह पर अशुभ ग्रहों की दृष्टि हो या वहाँ अुशभ ग्रह बैठै हों तो योग होता है?

क. निर्भाग्य ख. चामर योग ग. कूर्म योग घ. धनहीन

6. यदि जन्मकुण्डली में ११ वें भाव का स्वामी दु:स्थान में हो तो क्या होता है?

क. दारिद्रय ख. राज ग. दानवीर घ. धार्मिक

4.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि सर्वविदित है कि मानव जीवन सदैव खुशियों से भरा नहीं होता। कभी सुख तो कभी दु:ख और कभी-कभी व्यक्ति किंकर्तव्यविमूढ भी हो जाता है। राजा या दरिद्र होना मानव का उसके कर्मफल पर आधारित है। ज्योतिष शास्त्र में ग्रह योग के आधार पर यह ऋषियों ने अनुसंधान कर पता लगाया है कि कैसे कोई जातक ग्रह के प्रभाव तथा उसके दशादि में दरिद्रता को प्राप्त करता है। विविध ग्रन्थों के आधार पर, ऋषियों एवं आचार्यों के कथनानुसार इस इकाई में आप सभी के ज्ञानार्थ दारिद्रय योग का उल्लेख किया जा रहा है।

दारिद्रय योग का अर्थ है- दरिद्रता या निर्धनता। इस योग के प्रभाव से जातक की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय एवं कमजोर हो जाती है, जिसके फलस्वरूप वह अपने व अपने परिवार का पालन करने में समर्थ नहीं रह जाता है।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

दारिद्रय योग – निर्धन योग।

लग्नेश – लग्न का स्वामी

त्रिक् – ६,८,१२ स्थान।

केन्द्र – १,४,७,१० भाव को केन्द्र कहते है।

आपोक्लिम – ३,६,९,१२

त्रिकोण – ५,९ स्थान को त्रिकोण कहते है।

पणफर – २,५,८,११

व्यय भाव – १२ वाँ भाव

4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क
2. ग
3. ख

4. ख

5. क

6. क

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वृहत्पराशरहोराशास्त्र – दारिद्रय योगाध्याय:।

2. जातकपारिजात – जातकभंगाध्याय:।

2. फलदीपिका – षष्ठाध्याय:।

4.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. फलदीपिका – मूल लेखक – आचार्य मन्त्रेश्वर। टीकाकार – गोपेश ओझा।

2. सारावली – मूल लेखक – कल्याणवर्मा। टीकाकार- मुरलीधर चतुर्वेदी।

3. वृहज्जातकम् – मूल लेखक – वराहमिहिर, टीकाकार- आचार्य सत्येन्द्र मिश्र।

4. लघुजातकम् – मूल लेखक – वराहमिहिर, टीकाकार – कमलाकान्त पाण्डेय।

5. सर्वार्थचिन्तामणि – मूल लेखक – श्री वेंकटेश

6. जातकपारिजात – आचार्य वैद्यनाथ

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. दारिद्रय योग से क्या तात्पर्य है।

2. पराशरोक्त दारिद्रय योग का वर्णन कीजिये।

3. फलदीपिका के अनुसार दारिद्रय योग लिखिये।

4. दारिद्रय योग पर टिप्पणी लिखिये।

5. स्वकल्पित उदाहरण द्वारा दारिद्रय योग एवं दारिद्रय भंग योग को समझाइये।

इकाई - 5 मारक योग

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 मारक योग परिचय

5.3.1 विभिन्न प्रकार के मारक योग का विचार

5.3.2 मारक योग का प्रभाव

5.4 सारांश

5.5 पारिभाषिक शब्दावली

5.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.8 सहायक पाठ्यसामग्री

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -602 के प्रथम खण्ड की पाँचवी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – मारक योग। इससे पूर्व आपने फलित ज्योतिष से जुड़े विभिन्न विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में 'मारक योग' के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

मारक योग का अर्थ है- मृत्युतुल्य कष्ट प्रदान करने वाला योग। वस्तुत: कुण्डली में प्रधानतया द्वितीय एवं सप्तम भाव को मारक स्थान कहा गया है। इसलिए द्वितीयेश एवं सप्तमेश मारकेश कहे जाते हैं। अष्टम स्थान मृत्यु का होता है। आप मारक योग के कारक ग्रहों के साथ-साथ अन्य मारक योग के बारे में इस इकाई में अध्ययन करेंगे।

आइए इस इकाई में हम लोग 'मारक योग' के बारे में तथा उसके फलित सिद्धान्तों को जानने का प्रयास करते है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- मारक योग को परिभाषित कर सकेंगे।
- मारक योग के कारक ग्रह को जान लेंगे।
- मारक ग्रह कौन-कौन होते हैं, यह बता सकेंगे।
- कुण्डली फलादेश में मारक योग को समझा सकेंगे।
- मारक योग का महत्व जान लेंगे।

5.3 मारक योग

मृत्यु मानव जीवन का शाश्वत् सत्य है। कोई भी जीव इस मृत्युलोक में जन्म लेने के पश्चात् एक न एक दिन मृत्यु को अवश्य ही प्राप्त होता है, इसमें कथमपि संशय नहीं है। ज्योतिष शास्त्र कुण्डली के ग्रहों के आधार पर मारक योग का निर्धारण करता है। कुण्डली में २ एवं ७ वें स्थान को मारक स्थान कहते है। अष्टम स्थान मृत्यु का होता है। इन्हीं स्थानों एवं उनमें स्थित ग्रहों के आधार पर एवं अन्यान्य आधार पर भी ऋषियों ने मारक योग की कल्पना की है। यद्यपि हम सब जानते है कि जीवन-मृत्यु सब विधि के हाथ से नियन्त्रित होता है। तथापि एकमात्र ज्योतिष शास्त्र मारक योग का निर्धारण करने में सक्षम है। अत: इस इकाई में हम ऋषियों द्वारा अनुसन्धान किये गये उन्हीं

विविध मारक योगों का आपके ज्ञानार्थ उल्लेख करने जा रहे है।

वृहत्पराशर होराशास्त्र में आचार्य पराशर जी ने मैत्रेय से मारक योग का वर्णन करते हुए कहा कि -

मूल श्लोकः -

पराशर उवाच

तृतीयमष्टमस्थानमायुःस्थानं द्वयं द्विज!।
मारकं तद्वययस्थानं द्वितीयं सप्तमं तथा।।
तत्रापि सप्तमस्थानाद् द्वितीयं बलवत्तरम्।
तयोरीशौ तत्र गताः पापिनस्तेन संयुताः।।
ये खेटाः पापिनस्ते च सर्वे मारकसंज्ञकाः।
तेषां दशाविपाकेषु सम्भवे निधनं नृणाम्।।
अल्प-मध्यम-पूर्णायुः प्रमाणमिह योगजम।
विज्ञाय प्रथमं पुंसां मारकं परिचिन्तयेत्।।

पराशर ने मैत्रेय से कहा कि हे द्विज! प्राणियों के तृतीय तथा अष्टम स्थान आयुस्थान होते हैं। इन दोनों के व्यय स्थान, द्वितीय तथा सप्तम भाव मारक स्थान होते हैं। उन दोनों मारक स्थानों में द्वितीय स्थान प्रबल मारक स्थान होता हैं। उन (सप्तम, द्वितीय) स्थानों के तथा उन (सप्तम, द्वितीय) स्थानों में रहने वाने पाप ग्रह, द्वितीयेश तथा सप्तमेश के साथ रहने वाले पाप ग्रह-ये सभी मारक-संज्ञक होते हैं। उन्हीं ग्रहों की दशा या अन्तर्दशा में अल्प, मध्य, पूर्णायु आयुर्दाय के अनुरूप मृत्यु की सम्भावना होती हैं। अतएव पहले योगज के अनुसार अल्प, मध्य, दीर्घ आदि आयुर्दाय का ज्ञान करके तदनन्तर मारक का विचार करना चाहिए।

अलाभे पुनरेतेषां सम्बन्धेन व्ययेशितुः।
क्वचिच्छुभानां च दशास्वष्टमेशदशासु च।
केवलानां च पापानां दशासु निधनं क्वचित्।
कल्पनीयं बुधैर्नृणां मारकाणामदर्शने।।

गणित से समुत्पन्न आयुर्दाय के योगानुसार प्राणियों को पूर्वकथित मारक का समय उपलब्ध न हो तो व्ययेश के सम्बन्धी शुभ ग्रह की दशा में भी मरण होता हैं एवं अष्टमेश की दशा में या केवल पाप ग्रह की दशा में भी कभी-कभी मरण होता हैं। इस प्रकार पूर्वोक्त मारकेश के अभाव में प्राणियों के मरण का विचार विद्वानों को कल्पना द्वारा करना चाहिए।

सत्यपि स्वेन सम्बन्धे न हन्ति शुभभुक्तिषु।

हन्ति सत्यप्यसम्बन्धे मारकः पापभुक्तिषु।।

मारक-कारक ग्रह अपने सम्बन्धी होने पर भर शुभ ग्रह की अन्तर्दशा में नहीं मारता परन्तु अपने से सम्बन्धित न होने पर भी पापग्रह की अन्तर्दशा में मृत्युदायक होता हैं।

मारकग्रहसम्बन्धान्निहन्ता पापकृच्छनिः।
अतिक्रम्येतरान् सर्वान् भवत्यत्र न संशयः।।

यदि शनि पाप फलप्रद हो और मारकेश के साथ उसका सम्बन्ध (दृष्ट, युतादि) हो तो सभी मारक-कारक ग्रहों को हटाकर स्वतः मारक होता हैं, इसमें सन्देह नहीं हैं।

अथाऽन्यदपि वक्ष्यामि द्विज! मारकलक्षणम्।
त्रिविधाश्चायुषो योगाः स्वल्पायुर्मध्यमोत्तमाः।।
द्वात्रिंशत् पूर्वमल्पायुर्मध्यमायुस्ततः परम्।
चतुष्षष्टयाः पुरस्तात्तु ततो दीर्घमुदाहृतम्।।
उत्तमायुः शतादूर्ध्वं ज्ञातव्यं द्विजसत्तम!।
जनैर्विंशतिवर्षान्तमायुर्ज्ञातुं न शक्यते।।
जप-होम-चिकित्साद्यैर्बालरक्षां हि कारयेत्।
म्रियन्ते पितृदोषैश्च केचिन्मातृग्रहैरपि।।
केचित् स्वारिष्टयोगाच्च त्रिविधा बालमृत्यवः।
ततः परं नृणामायुर्गणयेद् द्विजसत्तम!।।

हे द्विज! और भी मारक ग्रह के लक्षण कहता हूँ। पूर्व में जो अल्पायु, मध्यमायु और पूर्णायु - यह तीन प्रकार का आयुर्दाय बताया गया हैं, उनमें 32 वर्ष से पूर्व अल्पायु, तदनन्तर 64 वर्षपर्यन्त मध्यमायु और उसके बाद 100 वर्ष तक दीधायु तथा 100 वर्ष से ऊपर उत्तमायु जानना चाहिए। 20 वर्ष तक जातकों के आयुर्दाय का निर्धारण करना कठिन होता हैं। अतः जन्म से 20 वर्ष तक पापग्रहों से रक्षा हेतु जप-होम, चिकित्सादि द्वारा जातक की रक्षा करनी चाहिए। 20 वर्ष तक कोई पिता के दोष से, कोई माता के दोष से, कोई अपने पूर्वार्जित कुकर्म से उत्पन्न अरिष्ट योगों से मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। अतः बाल्यावस्था में मरण के तीन कारण होते हैं। इसलिए 20 वर्ष के बाद ही आयुर्दाय का गणित करके आयु का निर्धारण करना चाहिए।

अथाऽन्यदपि वक्ष्यामि नृणां मारकलक्षणम्।
अल्पायुर्योगजातस्य विपद्धे च मृतिर्भवेत्।।
मध्यायुर्योगजस्यैवं प्रत्यरौ च मृतिर्भवेत्।

दीर्घायुर्योगजातस्य वधभे तु मृतिर्भवेत्।।
द्वाविंशत्र्यंशपश्चैव तथा वैनाशिकाधिपः।
विपत्तारा-प्रत्यरीशा वधभेशस्तथैव च।।
आद्यन्तपौ च विज्ञेयौ चन्द्राक्रान्तगृहाद् द्विज!।
मारकौर पापखेटौ तौ शुभौ चेद्रोगदौ स्मृतौ।।
षष्ठाधिपदशायां च नृणां निधनसम्भवः।
षष्ठाष्टरिष्फनाथानामपहारे मृतिर्भवेत्।।
मारका बहवः खेटा यदि वीर्यसमन्विताः।
तत्तद्दशान्तरे विप्र! रोगकष्टादिसम्भवः।।
उक्त ये मारकास्तेषु प्रबलो मुख्यमारकः।
तदवस्थानुसारेण मृतिं वा कष्टमादिशेत्।

हे द्विज! और भी मारक के लक्षण कहता हूँ। अल्पायु योग में जन्म लेने वाले जातक का विपत्ति नामक तारा में, मध्यमायु वालों को प्रत्यरि नामक तारा में और दीर्घायु योग में जन्म लेने वालों को वध नामक तारा में मारण की सम्भावना करनी चाहिए। लग्न के द्रेष्काण से 22 वाँ जो द्रेष्काण हो, उसका जो स्वामी हो उसमें, वैनाशिक नक्षत्र (अपने जन्मनक्षत्र में 23 वाँ नक्षत्र) का स्वामी एवं विपत्, प्रत्यरी, वध ताराओं के स्वामी चन्द्रमा जिस राशि में हो, उससे द्वितीय तथा द्वादश स्थान के स्वामी, दोनों पापी ग्रह हो तो ये सब मारक-कारक होते हैं। यदि दोनों शुभ ग्रह हों तो रोगकारक होते हैं। षष्ठेश की दशा में भी मरण की सम्भावना होती है। मारकेश की महादशा में षष्ठेश, अष्टमेश तथा द्वादशेश की अन्तदशा में भी मृत्यु की सम्भावना रहती हैं। यदि बहुत मारक-कारक ग्रह हों तो उनमें जो ग्रह सर्वाधिक बलयुक्त हो उसकी दशा या अन्तर्दशा में मरण या रोगादि कष्टकारक समय का प्रादुर्भाव होता हैं। उक्त मारकेश कारक ग्रहों में सबसे बली ग्रह ही मुख्य मारक होता हैं। अतः उस ग्रह की अवस्था के अनुरूप जातक का मरण या कष्टदायक समय का भय जानना चाहिए।

राहु-केतु का मारकत्वविवेचन

राहुश्चेदथवा केतुर्लग्ने कामेऽष्टमे व्यये।
मारकेशान्मदे वाऽपि मारकेशेन संयुतः।।
मारकः स च विज्ञेयः स्वदशान्तर्दशास्वपि।
मकरे वृश्चिके जन्म राहुस्तस्य मृतिप्रदः।।
षष्ठाऽष्टरिष्फगो राहुस्तद्दाये कष्टदो भवेत्।

शुभग्रहयुतो दृष्टो न तदा कष्टकृन्मतः।।

राहु अथवा केतु लग्न में, सप्तम, अष्टम या द्वादश भाव में हो अथवा मारकेश से सप्तम में हो या मारकेश से युक्त हो तो वह भी मारक होता हैं। अतः उसकी दशा या अन्तर्दशा में मरण का भय होता हैं। मकर और वृश्चिक लग्न में जन्म लेने वालों के लिए राहु मारक होता हैं। उसकी दशा या अन्तर्दशा में मृत्यु की सम्भावना होती है। षष्ठ, अष्टम, द्वादश में राहु स्थित हो तो उसकी दशा में कष्टदायक होता हैं। यदि उस पर शुभ ग्रह से युक्त अथवा दृष्ट न हो तो कष्टकारक नहीं होता।

तृतीय स्थान से मरण कारण-कथन

लग्नातृतीयभावे तु बलिना रविणा युते।
राजहेतोश्च मरणं तस्य ज्ञेयं द्विजोत्तम!।।
तृतीये चेन्दुना युक्ते दृष्टे वा यक्ष्मणा मृतिः।
कुजेन व्रणशस्त्राग्नि-दाहाद्यैर्मरणं भवेत्।।
तृतीये शनि-राहुभ्यां युक्ते दृष्टेऽपि वा द्विज!।
विषार्तितो मृतिर्वाच्या जलाद्वा वह्निपीडनात्।।
गर्तादुच्चात् प्रपतनाद् बन्धनाद् वा मृतिर्भवेत्।
तृतीये चन्द्रमान्दिभ्यां युक्ते वा वीक्षिते द्विज!।।
कृमिकुष्ठादिना तस्य मरणं भवति ध्रुवम्।
तृतीये बुधसंयुक्ते वीक्षिते वापि तेन च।।
ज्वरेण मरणं तस्य विज्ञेयं द्विजसत्तम!।
तृतीये गुरुणा युक्ते दृष्टे शोफादिना मृतिः।।
तृतीये भृगुयुग्दृष्टे मेहरोगेण तन्मृतिः।
बहुखेटयुते तस्मिन् बहुरोग भवा मृतिः।।

लग्न से तृतीय भाव बलवान रवि से युत हो तो राजा के कारण से उसकी मृत्यु होती है। तृतीय भाव चन्द्रमा से युत या दृष्ट हो तो यक्ष्म (क्षय) रोग से उसकी मृत्यु होती हैं। यदि तृतीय भाव मंगल से युक्त या दृष्ट हो तो व्रण (घाव) या अग्नि से, तृतीय में शनि, राहु से युत या दृष्ट हो तो विष से या जल से अथवा अग्निपीड़ा से या गड्डे में गिरकर या उच्च स्थान से गिरकर या बन्धन से उसकी मृत्यु हो जाती हैं। तृतीय भाव में चन्द्रमा और मान्दि (गुलिक) युक्त हो या दृष्ट हो तो कीड़े से अथवा कुष्ठादि रोग से, तृतीय भाव में बुध से युक्त हो या दृष्ट हो तो ज्वर से, तृतीय भाव में गुरू से युक्त या दृष्ट हो तो शोफ आदि रोग से, तृतीय भाव में शुक्र से युक्त या दृष्ट हो तो प्रमेह रोग से उसकी मृत्यु हो जाती हैं।

यदि तृतीय भाव में बहुत ग्रहों के योग अथवा दृष्टि हो तो उन सभी ग्रहों के कारणों से उस जातक की मृत्यु जाननी चाहिए।

मरण का स्थान-कथन

तृतीये च शुभैर्युक्ते शुभदेशे मृतिर्भवेत्।
पापैश्च कीकटे देशे मिश्रैर्मिश्रस्थले मृतिः।।

यदि तृतीय भाव शुभ ग्रह से युत अथवा दृष्ट हो तो शुभ स्थान (काशी आदि पुण्य तीर्थों) में मरण होता हैं। यदि तृतीय भाव पापी ग्रहों से युक्त हो या दृष्ट हो तो अशुभ स्थान में मरण होता हैं। शुभ तथा अशुभ दोनों ग्रह तृतीय भाव में बैठे हो या देखते हो तो मध्यम स्थान में उस जातक का देहावसान होता हैं।

ज्ञानाज्ञानपूर्वक मरणयोग

तृतीये गुरुशुक्राभ्यां युक्ते ज्ञानेन वै मृतिः।
अज्ञानेनाऽन्यखेटैश्च मृतिर्ज्ञेया द्विजोत्तम!।।

तृतीय भाव गुरू-शुक्र युक्त हो तो वह जातक ज्ञानपूर्वक मरता हैं। हे द्विजोत्तम! अन्य ग्रह तृतीय भाव में स्थित हों तो जातक का अज्ञानपूर्वक मरण होता हैं।।33।।

मरण देशज्ञान

चरराशौ तृतीयस्थे परदेशे मृतिर्भवेत्।
स्थिरराशौ स्वगेहे च द्विस्वभावे पथि द्विज!।।

तृतीय भाव में चर राशि हो तो परदेश में मरण होता हैं। स्थिर राशि हो तो स्वदेश में एवं द्विस्वभाव राशि हो तो मार्ग में मरण करना चाहिए।

अष्टमस्थ ग्रह से मृत्यु का कारण-ज्ञान

लग्नादष्टमभावाच्च निमित्तं कथितं बुधैः।
सूर्येऽष्टमेऽग्नितो मृत्युश्चन्द्रे मृत्युर्जलेन च।
शस्त्राद् भौमे ज्वराज्ञे च गुरौ रोगात् क्षुधा भृगौ।
पिपासया शनौ मृत्युर्विज्ञेयो द्विजसत्तम!।।

लग्न से अष्टम भाव में सूर्य स्थित हो तो अग्नि के माध्यम से उसकी मृत्यु विद्वानों ने कही हैं। अष्टम चन्द्र हो तो जल से, अष्टम मंगल हो तो शस्त्र से, अष्टम बुध हो तो ज्वर से, अष्टमस्थ गुरू हो

तो रोग से, शुक्र हो तो क्षुधा से और अष्टम शनि हो तो प्यास से उस जातक की मृत्यु हो जाती हैं।

तीर्थातीर्थ में करण-कथन

अष्टमे शुभदृग्युक्ते धर्मपे च शुभैर्युते।
तीर्थे मृतिस्तदा ज्ञेया पापाख्यैरन्यथा मृतिः।।

अष्टम भाव शुभ ग्रह से युक्त या दृष्ट हो और धर्मेश शुभ ग्रह से युत हो तो वह जातक किसी तीर्थ में देह-त्याग करता हैं। अष्टम पापग्रह से युत, दृष्ट हो और धर्मेश पापग्रह से युत हो तो तीर्थ से अन्यत्र मरण कहना चाहिए।

शवपरिणाम

अग्न्यम्बु मिश्रभत्र्यंशैर्ज्ञेयो मृत्युर्गृहाश्रितैः।
परिणामः शवस्याऽत्र भस्मसंक्लेदशोषकैः।।
व्यालवर्गदृकाणैस्तु विडम्बो भवति ध्रुवम्।
शवस्य स्वश्रृगालाद्यैर्गृध्रकाकादिपक्षिभिः।।

लग्न से अष्टम स्थान में अग्नि तत्व वाले ग्रह का द्रेष्काण हो अर्थात् अशुभ ग्रह का द्रेष्काण हो तो जातक का शव अग्नि में जलाया जाता हैं। जलचर वाले ग्रह का द्रेष्काण हो तो जल में फेंका जाता हैं। मिश्र (शुभ तथा अशुभ) का द्रेष्काण रहने से जातक का शव सूख जाता हैं। यदि व्याल (सर्प) द्रेष्काण हो तो कुक्कुर, श्रृगालादि हिंसक जन्तुओं से या कौवा आदि पक्षियों से चंचु द्वारा चोंच से नोचकर शव का भक्षण किया जाता हैं।

व्याल द्रेष्काणकथन

कर्कटे मध्यमोऽन्त्यश्च वृश्चकाद्याद्वितीयकौ।
मीनेऽन्तिमस्त्रिभागैश्च व्यालवर्गाः प्रकीर्तिताः।।

कर्कट राशि के द्वितीय तथा तृतीय द्रेष्काण, वृश्चिम राशि के प्रथम तथा द्वितीय द्रेष्काण एवं मीन राशि के तृतीय द्रेष्काण को व्याल वर्ग (सर्प द्रेष्काण) कहते हैं।

पूर्वजन्म-योनि और स्थान-कथन

रविचन्द्रबलाक्रान्तं त्र्यंशनाथे गुरौ जनः।
देवलोकात् समायातो विज्ञेयो द्विजसत्तम!।।
शुक्रेन्द्वोः पितृलोकात्तु मत्र्याच्च रविभौमयोः।
बुधाऽऽक्र्योर्नरकादेवं जन्मकालाद्वदेत् सुधीः।।

राशि और चन्द्रमा में जो बली हो वह ग्रह यदि गुरू के द्रेष्काण में हो तो जातक देवलोक ये आया है अर्थात् वह इससे पूर्वजन्म में देवलोक में रहता था, ऐसा जानना चाहिए। यदि शुक्र या चन्द्रमा के द्रेष्कण में हो तो वह पितृलोक (चन्द्रलोक) से आया हैं। इसी प्रकार रवि-भौम के द्रेष्काण में मृत्युलोक से एवं बुध या शनि के द्रेष्काण में हो तो वह जातक नरक से आया है, ऐसा जानना चाहिए।

मरण के अनन्तर गन्तव्य स्थान

गुरुश्चन्द्रसितौ सूर्यभौमौ ज्ञार्की यथाक्रमम्।
देवेन्दुभूम्यधोलोकान् नयन्त्यस्तारिरन्ध्रगाः।।

लग्न से 7, 6, 8 भावों में गुरू गया हो तो जातक देवलोक में जाता हैं एवं उक्त स्थानों में चन्द्रमा-शुक्र हो तो जातक चन्द्रलोक (पितृलोक) में जाता हैं तथा सूर्य-मंगल हो तो मत्र्य (भूलोक) में और बुध-शनि उक्त भावों में स्थित हो तो अधोलोक (नरक) में मरण के अनन्तर जातक जाता हैं। उक्त स्थानों मे अधिक ग्रह बैठे हो तो जो ग्रह सर्वाधिक बली हो, वह ग्रह जिस लोक का कारक हो, उसी लोक में मरण के बाद जातक जाता हैं।

अथ तत्र ग्रहाभावे रन्ध्रारित्र्यंशनाथयोः।
यो बली स निजं लोके नयत्यन्ते द्विजोत्तम!।।

हे द्विजोत्तम! यदि 6।7।8 भावों में ग्रह नहीं हो तो षष्ठ और अष्टम भाव के द्रेष्काणाधिप में जो ग्रह बली हो, उस ग्रह के लोक में मरण के पश्चात् जीव चला जाता हैं।।

तस्य स्वोच्चादिसंस्थित्या वरमध्याऽधमाः क्रमात्।
तत्तल्लोकेऽपि संजाता विज्ञेया द्विजसत्तम!।।

हे द्विजोत्तम! पूर्वकथित भावों में पूर्वोक्त ग्रह की उच्चादि स्थितिरश उस लोक में भी जीव को उत्तम, मध्यम एवं अधम पंक्ति में जानना चाहिए। अर्थात् उच्चस्थ ग्रह हो तो देव आदि लोकों में वह जीव श्रेष्ठ, नीच में हो तो नीच श्रेणी का और मध्य में ग्रह हो तो मध्यम श्रेणी का होता हैं।

अन्यान् मारकभेदांश्च राशिग्रहकृतान् द्विज!।
दशाध्यायप्रसङेगषु कथयिष्यामि सुव्रत!।।

श्लोकार्थ है कि हे द्विज! अन्य जो ग्रह तथा राशि के माध्यम से मारक भेद हैं, उन सभी को दशाध्याय-प्रसंग में कहूँगा।

अब यहाँ वृहत्पराशरहोराशास्त्र के पश्चात् अन्य मन्त्रेश्वर द्वारा लिखित ग्रन्थ फलदीपिका से मारक योग का विचार करते हैं।

फलदीपिका के अनुसार मारक अथवा मृत्यु योग विचार –

शशांकसंयुक्तदृगणपूर्वत:।
खरत्रिभागेशगृहं गतेऽपि वा।।
त्रिकोणगे वा मरणं शरीरिणां
शशिन्यथ स्यात्तनुरन्ध्रारि:फगे।।

अर्थात् मृत्यु के समय चन्द्रमा कहाँ होगा? निम्न स्थानों में चन्द्रमा की स्थिति हो सकती है-

1. जन्मकालीन जिस द्रेष्काण में चन्द्रमा हो उसमें जब गोचर वश चन्द्रमा आ जाये।

2. जन्मकाल में चन्द्रमा जिस स्थान पर है वहाँ से गणना करने पर जो बाइसवाँ द्रेष्काण हो उस २२ वें द्रेष्काण के स्वामी की राशि में।

3. ऊपर 4. लग्न में 5. लग्न से अष्टम में 6. लग्न से द्वादश में। इनमें से कहीं भी चन्द्रमा की स्थिति हो सकती है।

निधनेश्वरगतराशौ भानाविन्दौ तु भानुगतराशौ।
निधनाधिपसंयुक्ते नक्षत्रे निर्दिशेन्मरणम्।।

अर्थात् यदि जन्म लग्न से अष्टम का स्वामी जहाँ स्थित हो उस राशि में सूर्य गोचरवश जा रहा हो और चन्द्रमा जिस राशि में जन्मकुण्डली में बैठा हो उस में जा रहा हो अथवा जन्म लग्न से अष्टमेश जन्मकुण्डली में जिस नक्षत्र में हो उस नक्षत्र में चन्द्रमा गोचरवश हो तो जातक की मृत्यु हो सकती है।

तिष्ठन्त्यष्टमरि: फषष्ठपतयो रन्ध्रत्रिभागेश्वरो।
मान्दिर्यद्भवनेषु तेष्वपि गृहेष्वार्कीडयसूर्येन्दव:।।
सर्वे चारवशात्प्रयान्ति हि यदा मृत्युस्तदा स्यान्नृणां
तेषामंशवशाद्वदन्तु निधनं तत्तत्त्रिकोणेऽपि वा।।

अर्थात् कुण्डली में निम्न की स्थितयाँ देखनी चाहिए-

1.अष्टमेश

2.व्ययेश

3. षष्ठेश

4. अष्टम भाव मध्य जिस द्रेष्काण में है उसका स्वामी

5. मान्दि।

जब गोचरवश शनि, गुरु, सूर्य और चन्द्र उपर्युक्त ६,८,१२ राशियों में जा रहे हो तो जातक की मृत्यु हो सकती है।

बोध प्रश्न –

1. कुण्डली में मारक स्थान कौन होता है।

   क. २, ७ ख. ५,८ ग. १,५ घ. ६,१२

2. पराशर जी के अनुसार मृत्यु का स्थान है?

   क. २,५ ख. ३,८ ग. १,४ घ. ५,७

3. निम्न में मारकेश होता है।

   क. लग्न का स्वामी ख.मारक स्थान का स्वामी ग. द्वितीय का स्वामी घ. कोई नहीं

4. लग्न से अष्टम स्थान में अग्नि तत्व वाले ग्रह का द्रेष्काण हो अर्थात् अशुभ ग्रह का द्रेष्काण हो तो जातक के शव का क्या होता है।

   क. अग्नि में दाह ख. जल में बहना ग. पक्षी भोजन घ. पशु भोजन

5. लग्न से 7, 6, 8 भावों में गुरू गया हो तो जातक मृत्यु के बाद कहाँ जाता हैं

   क. नरक लोक में ख. देवलोक में ग. पाताल में घ. नाग लोक में

6. तृतीय भाव गुरू-शुक्र युक्त हो तो वह जातक कैसे मरता हैं।

   क. ज्ञानपूर्वक ख. अज्ञानता में ग. नींद में घ. कार्य करते हुए

7. निम्न में मन्त्रेश्वर लिखित ग्रन्थ का नाम क्या है।

   क. जातकपारिजात ख. फलदीपिका ग. वृहत्संहिता घ. ग्रहलाघव

5.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि मृत्यु मानव जीवन का शाश्वत् सत्य है। कोई भी जीव इस मृत्युलोक में जन्म लेने के पश्चात् एक न एक दिन मृत्यु को अवश्य ही प्राप्त होता है, इसमें कथमपि संशय नहीं है। ज्योतिष शास्त्र कुण्डली के ग्रहों के आधार पर मारक योग का निर्धारण करता है। कुण्डली में २ एवं ७ वें स्थान को मारक स्थान कहते है। अष्टम स्थान मृत्यु का होता है। इन्हीं स्थानों एवं उनमें स्थित ग्रहों के आधार पर एवं अन्यान्य आधार पर भी ऋषियों ने मारक योग की कल्पना की है। यद्यपि हम सब जानते है कि जीवन-मृत्यु सब विधि के हाथ से नियन्त्रित होता है। तथापि एकमात्र ज्योतिष शास्त्र मारक योग का निर्धारण करने में सक्षम है।

5.6 पारिभाषिक शब्दावली

मारक योग – मृत्यु देने वाला योग।

मारक स्थान – २,७,८

चन्द्र लोक – पितृ लोक

अधो लोक – भू लोक अथवा नरक लोक

आपोक्लिम – ३,६,९,१२

केन्द्र – १,४,७,१० स्थान को केन्द्र कहते है।

त्रिक स्थान - ६ ,८,१२

5.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क
2. ख
3. ख
4. क
5. ख
6. क
7. ख

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वृहज्जातकम् - चन्द्राध्याय:।
2. वृहत्पराशरहोराशास्त्र – चन्द्रादियोगाध्याय:।

5.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. फलदीपिका – मूल लेखक – आचार्य मन्त्रेश्वर। टिकाकार – गोपेश ओझा।
2. सारावली – मूल लेखक – कल्याणवर्मा। टिकाकार- मुरलीधर चतुर्वेदी।
3. वृहज्जातकम् – मूल लेखक – वराहमिहिर, टिकाकार- आचार्य सत्येन्द्र मिश्र।
4. लघुजातकम् – मूल लेखक – वराहमिहिर, टिकाकार – कमलाकान्त पाण्डेय।

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मारक योग से क्या तात्पर्य है।
2. महर्षि पराशर द्वारा प्रणीत प्रमुख मारक योगों का वर्णन कीजिये।
3. कुण्डली में मारक स्थान कौन होता है। उससे मारक योग का निर्धारण कैसे करते है।
4. मारक योग पर टिप्पणी लिखिये।

खण्ड - 2

दशा साधन

इकाई - 1 विंशोत्तरी दशा साधन

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 विंशोत्तरी दशा साधन परिचय
1.3.1 गणितीय पक्ष
1.3.2 विंशोत्तरी दशा साधन - वृहत्पराशर के अनुसार
1.4 सारांश
1.5 पारिभाषिक शब्दावली
1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.8 सहायक पाठ्यसामग्री
1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई तृतीय सेमेस्टर (MAJY-602) के द्वितीय खण्ड की पहली इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – विंशोत्तरी दशा साधन। इससे पूर्व आपने विभिन्न योगों से जुड़े विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में दशाओं के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

'दशा का सामान्य अर्थ है – स्थिति। जातक के जीवन में कालानुरोधेन उसकी किस कालखण्ड में क्या स्थिति है। इसका ज्ञान दशाओं के माध्यम से किया जाता है। विंशोत्तरी दशा १२० वर्षों की होती है। इसी को आधार मानकर भारत के अधिकाधिक भूभाग में कुण्डली का फलादेश किया जाता है।

आइए इस इकाई में हम लोग 'विंशोत्तरी दशा साधन' के बारे में उसकी गणितीय सिद्धान्तों को जानने का प्रयास करते है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- विंशोत्तरी दशा को परिभाषित कर सकेंगे।
- ग्रहों की आयु दशा वर्ष से परिचति हो जायेंगे।
- विंशोत्तरी दशा का साधन कर सकेंगे।
- विंशोत्तरी दशा के महत्व को बता सकेंगे।

1.3 विंशोत्तरी दशा साधन

ऋषियों ने त्रिकाल (भूत, वर्तमान तथा भविष्य) का शुभाशुभ जानने के लिए दशा का निर्माण किया है। दशा अनेक प्रकार की होती है। उनमें विंशोत्तरी, अष्टोत्तरी तथा योगिनी का प्रचार विशेष है। सामान्यतया दशा का शाब्दिक अर्थ है – काल की स्थिति। कालानुरोधेन किसी जातक के ऊपर क्या-क्या प्रभाव पड़ेगा। इसका ज्ञान दशाओं के माध्यम से ही किया जाता है। वर्तमान समय में देश के पूर्वोत्तर प्रदेश तथा राजस्थान में प्राय: विंशोत्तरी दशा का उपयोग विशेष रूप से करते हैं। सिन्ध, पंजाबादि में योगिनी दशा तथा दक्षिण मध्य भारत तथा गुजरात में अष्टोत्तरी दशा को व्यवहार में विशेष रूप से ग्रहण करते हैं। परन्तु शास्त्रीय वचन इस विषय में कुछ भिन्न एवं अनेक है-

दशाप्यष्टोत्तरी शुक्ले कृष्णे विंशोत्तरी मता। (मानसागरी ग्रन्थानुसार)

अर्थात् शुक्ल पक्ष में जन्म हो तो अष्टोत्तरी दशा तथा कृष्ण पक्ष में जन्म हो तो विंशोत्तरी दशा लेनी

चाहिए।

दशा विंशोत्तरी चात्र ग्राह्या नाष्टोत्तरी मता। (लघुपराशरी के अनुसार)

नक्षत्र पर से साधित दशा विंशोत्तरी ही लेनी चाहिए। अष्टोत्तरी दशा नहीं। इसी श्लोक का पाठान्तर प्राचीन विद्वानों के घर में हस्त लिखित ग्रन्थों में निम्नलिखित मिलता है। दशा विंशोत्तरी ग्राह्या मता चाष्टोत्तरी तथा विंशोत्तरी दोनों दशायें फलाफल के विचार के लिए उपयुक्त हैं।

कृष्णपक्षे दिवाजात: शुक्लपक्षे यदा निशि।
विंशोत्तरी दशा प्रोक्ताऽन्यत्राप्यष्टोत्तरी स्मृता।।

कृष्ण पक्ष में दिन में तथा शुक्ल पक्ष में रात्रि में जन्म हो तो विंशोत्तरी दशा ग्रहण करनी चाहिए। इसके विपरीत हो तो अष्टोत्तरी।

गुर्जरे कच्छसौराष्ट्रे पांचाले सिन्धुपर्वते।
एतेष्वष्टोत्तरी श्रेष्ठाऽन्यत्र विंशोत्तरी मता।।

गुजरात, कच्छ, काठियावाड़ सौराष्ट्र, पांचाल पंजाब, तथा सिन्धु पर्वत में अष्टोत्तरी दशा ग्रहण करनी चाहिए। अन्यत्र विंशोत्तरी दशा को ग्रहण करें।

विंशोत्तरी दशा १२० वर्ष की होती है। इसमें सूर्य, चन्द्र, मंगल, राहु, गुरु, शनि, बुध, केतु तथा शुक्र इनकी क्रमश: दशा रहती है। इन्हीं वारों के क्रम से कृत्तिकादि २७ नक्षत्रों की तीन आवृत्ति हो जाने से एक-एक ग्रह में तीन-तीन नक्षत्र रहते हैं।

विंशोत्तरी दशा चक्र –

ग्रह दशा क्रम	**सूर्य**	**चन्द्रमा**	**मंगल**	**राहु**	**गुरु**	**शनि**	**बुध**	**केतु**	**शुक्र**
दशा वर्ष	६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२०
नक्षत्र	कृ. उ0फा0, उ0षा0	रो, ह, श्र.	मृ. चि. ध.	आ. स्वा. श.	पु. वि. पू.	पु. अ. उ.भा.	आश. ज्ये. रे	म. मू. अ.	भ. पू. फा., पू.षा.

जातक का जन्म नक्षत्र जिस ग्रह के कोष्ठक में पड़े, वह उसकी जन्म दशा होगी। उस दशा का जन्म समय में व्यतीत काल नक्षत्र के भयात पर से निकाला जाता है। अर्थात् भभोग काल में दशा के पूरे वर्ष मिलते हैं तो भयात काल में कितने मिलेंगे? इस अनुपात द्वारा व्यतीत वर्षादि का मान आ जायेगा। उसको दशा वर्ष में घटाने से दशा का भोग्य मान शेष रहेगा। जन्म के पश्चात् दशा का भोग्य

मान भोग लेने के अनन्तर दूसरे ग्रह की दशा प्रारम्भ होगी। उसके बाद अन्य ग्रहों की दशा चलती रहेगी।

विंशोत्तरी महादशान्तर्दशा ज्ञान बोधक चक्र

सूर्यदशा वर्ष ६ कृ. उ. फा. उषा.	चंद्रदशावर्ष १० रोहि. ह. श्रवण	भौमदशा वर्ष ७ मृ. चि. ध.
ग्र. व. मा. दि. सू. ० ३ १८ चं. ० ६ ० मं. ० ४ ६ रा. ० १० २४ वृ. ० ९ १८ श. ० ११ १२ बु. ० १० ६ के. ० ४ ६ शु. १ ० ०	ग्र. व. मा. दि. चं. ० १० ० मं. ० ७ ० रा. १ ६ ० वृ. १ ४ ० श. १ ७ ० बु. १ ५ ० के. ० ७ ० शु. १ ८ ० र. ० ६ ०	ग्र. व. मा. दि. मं. ० ४ २७ रा. १ ० १८ वृ ० ११ ६ श. १ १ ९ बु. ० ११ २७ के. ० ४ २७ शु. १ २ ० र. ० ४ ६ चं. ० ७ ०
राहुदशा वर्ष १८ आर्द्रा. स्वा. शत.	गुरुदशा वर्ष १६ पुन. वि. पू. भा.	शनिदशा वर्ष १९ पुष्य अनु. उ. भा.
ग्र. व. मा. दि. रा. २ ८ १२ वृ. २ ४ २४ श. २ १० ६ बु. २ ६ १८ के. १ ० १८ शु. ३ ० ० र. ० १० २४ चं. १ ६ ० मं. १ ० १८	ग्र. व. मा. दि. वृ. २ १ १८ श. २ ६ १२ बु. २ ३ ६ के. ० ११ ६ शु. २ ८ ० र. ० ९ १८ चं. १ ४ ० मं. ० ११ ६ रा. २ ४ २४	ग्र. व. मा. दि. श. ३ ० ३ बु. २ ८ ९ के. १ १ ९ शु. ३ २ ० र. ० ११ १२ चं. १ ७ ० मं. १ १ ९ रा. २ १० ६ वृ. २ ६ १२
बुधदशा वर्ष १७ आश्ले. ज्ये. रेवती	केतुदशा वर्ष ७ मघा. मू. अश्वि.	शुक्रदशा वर्ष २० पू. फा. पू. षा. भ.
ग्र. व. मा. दि. बु. २ ४ २७ के. ० ११ २७ शु. २ १० ० र. ० १० ६ चं. १ ५ ० मं. ० ११ २७ रा. २ ६ १८ वृ. २ ३ ६ श. २ ८ ९	ग्र. व. मा. दि. के. ० ४ २७ शु. १ २ ० र. ० ४ ६ चं. ० ७ ० मं. ० ४ २७ रा. १ ० १८ वृ. ० ११ ६ श. १ १ ९ बु. ० ११ २७	ग्र. व. मा. दि. शु. ३ ४ ० र. १ ० ० चं. १ ८ ० मं. १ २ ० रा. ३ ० ० वृ. २ ८ ० श. ३ २ ० बु. २ १० ० के. १ २ ०

1.3.1 गणितीय पक्ष

दशा का भुक्त तथा भोग्य काल ज्ञान –

भयात (चन्द्र साधन में जो साधित होता है) के घटी पल के मान को पलात्मक बनाकर उन्हें जन्म नक्षत्र से प्राप्त दशा वर्ष संख्या से गुणा करें और गुणनफल में भभोग के घटी, पलों के पलात्मक मान से भाग देने से प्राप्त लब्धि संख्या वर्ष होगी। शेष को १२ से गुणाकर भभोग पलात्मक का भाग देने से लब्ध मास होंगे। शेष को ३० से गुणाकर पलात्मक भभोग का भाग देने पर लब्ध संख्या दिन होंगे। पुन: शेष को ६० से गुणाकर पलात्मक भभोग पल का भाग देने पर लब्धि संख्या घटी होगी। इस प्रकार पल भी आयेंगे। यह वर्षादि संख्या दशा का भुक्त मान होगा। उसे दशा वर्ष में घटाने से शेष दशा का भोग्य मान होगा।

मान लिया कि किसी जातक का जन्म नक्षत्र मृगशिरा है। भयात २५।४५ तथा भभोग ५६।२० है। कृत्तिकादि नक्षत्र क्रम से गणना करने पर मंगल की महादशा में जन्म हुआ। जिसकी दशा वर्ष संख्या ७ है।

२५ × ६० = १५०० + ४५ = १५४५ पलात्मक भयात

५६ × ६० = ३३६० + २० = ३३८० पलात्मक भभोग

१५४५ × ७ = १०८१५ ÷ ३३८० = ३ वर्ष

३३८०)१०८१५(३ वर्ष

१०१४०

६७५

× १२

३३८०)८१००(२ मास

६७६०

१३४०

× ३०

४०२००

३३८०)४०२००(११ दिन

३३८०

६४००

३३८०
३०२०
× ६०
३३८०)१८१२००(५३ घटी
१६९००
१२२००
१०१४०
२०६०
× ६०
३३८०)१२३६००(३६ पल
१०१४०
२२२००
२०२८०
१९२०

मंगल की दशा - ७।०।०।०।०।०
भुक्त - - ३।२।११।५३।३६ (घटाया)
भोग्य – ३।९।१८।६।२४

जन्म के समय मंगल की दशा वर्षादि ३।२।११।५३।३६ इतनी भुक्त हो चुकी थी और ३।९।१८।६।२४ इतनी वर्षादि दशा शेष थी। इसके बाद १८ वर्ष राहु की दशा रहेगी एवं क्रमश: गुरु,शनि एवं बुध इत्यादि की दशा चलेगी।

1.3.2 विंशोत्तरी दशा साधन – वृहत्पराशर होरा शास्त्र के अनुसार

समस्त चराचर प्राणियों के जीवनकाल में उनका कौन सा समय शुभ है, अथवा कौन सा समय अशुभ हैं, इसका विवेक ज्योतिष शास्त्र के उस अभीष्ट कालावधि में प्रचलित दशा व महादशा के आधार पर होता है। जन्माङ्ग चक्र में ग्रहों की जो शुभाशुभ फल की स्थिति होती है, वही फल उन ग्रहों की दशान्तर्दशाओं में जातक को प्राप्त होता है । विंशोत्तरी दशाओं का प्रचलन विन्ध्य से उत्तर दिशाओं के प्रान्तों में है। दशाओं के सम्बन्ध में **आचार्य पराशर ने वृहत्पराशरहोराशास्त्र** के दशाध्याय में प्रतिपादित किया है –

दशा: बहुविधास्तासु मुख्या विंशोत्तरी मता ।
कैश्चिदष्टोत्तरी कैश्चित् कथिता षोडशोत्तरी ।।

द्वादशाब्दोत्तरी विप्र दशा पञ्चोत्तरी तथा।
दशा शतसमा तद्वत् चतुराशीतिवत्सरा।।
द्विसप्ततिसमा षष्टिसमा षट्त्रिंशवत्सरा।
नक्षत्राधाररिकाश्चैता: कथिता: पूर्वसूरिभि:।।

अर्थात् दशा के अनेक भेद है, परन्तु उनमें भी मुख्य दशा **विंशोत्तरीय** दशा है, जो सर्वसाधारण के लिए हितकारी है। अन्य विद्वानों ने अष्टोत्तरी, षोडशोत्तरी, द्वादशोत्तरी, पञ्चोत्तरी, शताब्दि, चतुरशीतिसमा, द्विसप्ततिसमा, षष्टिसमा, षट्त्रिंशत्समा आदि ये सभी जन्मनक्षत्राधारित दशाओं की चर्चा की हैं।

एवं च –

अथ कालदशा चक्रदशा प्रोक्ता मुनीश्वरै:।
कालचक्रदशा चाऽन्या मान्या सर्वदशासु या।।
दशाऽथ चरपर्याया स्थिराख्या च दशा द्विज।
केन्द्राद्या च दशा ज्ञेया कारकादिग्रहोद्भवा।।
ब्रह्मग्रहाश्रितर्क्षाद्या दशा प्रोक्ता तु केनचित्।
माण्डूकी च दशा नाम तथा शूलदशा स्मृता।।
योगार्धजदशा विप्र दृग्दशा च तत: परम्।
त्रिकोणाख्या दशा नाम तथा राशिदशा स्मृता।।
पञ्चस्वरदशा विप्र विज्ञेया योगिनीदशा।
दशा पिण्डी तथांशी च नैसर्गिकदशा तथ।।

उपर्युक्त प्रसङ्ग के अनुसार दशाओं में कालदशा, चक्रदशा है तथा सभी दशाओं में मान्य कालचक्र दशा कही गयी है। इनके अतिरिक्त चरदशा, स्थिरदशा, केन्द्रदशा, कारकदशा एवं ब्रह्मग्रहदशा भी कही गई है। किसी ने मण्डूकदशा, शूलदशा, योगार्धदशा, दृग्दशा, त्रिकोणदशा, राशिदशा, पञ्चस्वरदशा, योगिनीदशा, पिण्डदशा, नैसर्गिक दशा, अष्टवर्ग दशा, सन्ध्या दशा, पाचक दशा एवं अन्य तारादि विभिन्न दशाभेद कहा है । परन्तु सभी दशायें सर्वसम्मत नहीं हैं अर्थात् व्यवहारोपयोगी नहीं है।

पराशरोक्त सभी दशाओं में नक्षत्र दशा तथा उनमें भी विंशोत्तरी दशा सर्वश्रेष्ठ है। कलौ पाराशरी दशा की प्रसिद्धि के साथ – साथ कलियुग में विंशोत्तरी को ही प्रत्यक्ष फलदायक कहा है -

कलौ प्रत्यक्ष फलदा दशा विंशोत्तरी स्मृता।

अष्टोत्तरी न संग्राह्या मारकार्थं विचक्षणै:।।

साथ ही लघुपराशरी में स्पष्टतया '**दशा विंशोत्तरी चात्र ग्राह्या नाष्टोत्तरी मता'** कहकर विंशोत्तरी दशा को सर्वदशा शिरोमणि कहा है।

दशा, अन्तर्दशा, महादशा का ज्ञान सर्वतोभावेन लोककल्याणकारी है, जिसके ज्ञान से हम किसी भी चराचर प्राणी का व सृष्टि के समस्त पदार्थ का शुभाशुभ फल का ज्ञान करने में समर्थ हो सकते है। विंशोत्तरी दशा साधन की गणितीय विधि आचार्यों ने नक्षत्रों के आधार पर कहा है, तथा उसके आधार पर किसी जातक के उसके सम्पूर्ण जीवन में होनेवाली शुभाशुभ फल का विधान प्रतिपादित किया है।

विंशोत्तरी दशा साधन -

कृत्तिकात: समारभ्य त्रिरावृत्तय दशाधिपा:।
आ- चं- कु – रा- गु- श- बु -के शुपूर्वा विहगा: क्रमात्।।
वह्निभाज्जन्मभं यावद् या संख्या नवतष्टिता।
शेषाद्दशाधिपो ज्ञेयस्तमारभ्य दशां नयेत्।।
विंशोत्तरशतं पूर्णमायु: पूर्वमुदाहृतम्।
कलौ विंशोत्तरी तस्माद् दशा मुख्या द्विजोत्तम।।

कृत्तिका नक्षत्र से आरम्भ करके क्रम से सूर्य, चन्द्र, भौम, राहु, गुरू, शनि, बुध, केतु और शुक्र – ये तीन आवृत्ति में दशाधिकारी होते है। कृत्तिका नक्षत्र से जन्म नक्षत्र तक गिनकर जो संख्या हो, उसमें 9 का भाग दें, शेष तुल्य पूर्वोक्त दशा – क्रम से दशाधिप होते हैं। कृत्तिका नक्षत्र से आरम्भ करके पूर्वकथित दशाक्रम से ग्रहों की दशा लगानी चाहिये। कलियुग में 120 वर्ष की पूर्णायु कही गई है। अत: अन्य दशाओं की अपेक्षा विंशोत्तरी दशा ही प्रमुख मानी जाती है।

रव्यादि ग्रहों के दशावर्ष -

दशासमा: क्रमादेषां षड् दशाऽश्वा गजेन्दव:।
नृपाला: नवचन्द्राश्च नगचन्द्रा नगा नखा:।।

सूर्यादि नवग्रहों के दशावर्ष संख्या क्रम से ये हैं – 6, 10, 7, 18, 16, 19,17,7, 20।

अर्थात् सूर्य – 6 वर्ष, चन्द्रमा के – 10 वर्ष, मंगल – 7 वर्ष, राहु – 18 वर्ष, गुरू – 16 वर्ष, शनि – 19 वर्ष, बुध – 17 वर्ष, केतु – 7 वर्ष, शुक्र – 20 वर्ष।

लग्न और सूर्यादि ग्रहों के दशाक्रम –

उदयरविशशांकप्राणिकेन्द्रादिसंस्था:।

प्रथमवयसि मध्येऽन्त्ये च दद्यु: फलानि।।

नहि न फलविपाक: केन्द्रसंस्थाद्यभावे।

भवति हि फलपक्ति: पूर्वमापोक्लिमेऽपि।।

अर्थात् सूर्य – चन्द्र इन तीनों में जो अधिक बलवान हो पहले उसकी दशा होती है फिर उसके बाद केन्द्र स्थान में स्थित ग्रहों की दशा होती है। यह दशा जीवन के प्रथमवय में होती है। उसके बाद मध्यवय में प्रथमवय में होती है। उसके बाद मध्यवय में प्रथमदशाप्रद से पणफरस्थित ग्रहों की दशा होती है। उसके बाद अन्तवय में प्रथमदशा प्रद से आपोक्लिम स्थित ग्रहों की दशा होती है।

दशा वर्ष –

आयु: कृतं येन हि यत्तदेव

कल्प्या दशा सा प्रबलस्य पूर्वा।

साम्ये बहूनां बहुवर्षदस्य

तेषां च साम्ये प्रथमोदितस्य।।

जिस ग्रह की जितनी आयुर्दाय हो, उसकी उतनी ही दशा होती है। यह दशा भी बलानुसार होती है। इसमें सबसे बली ग्रह की दशा पहले होती है।

यदि दो – तीन आदि ग्रहों में बल साम्य हो तो उनमें जिसके अधिक वर्ष हों उसकी दशा प्रथम होती है। अगर वर्ष में भी समानता हो तो सूर्य के सान्निध्य वश जिसका प्रथम उदय हुआ हो उसी की दशा पहले होती है।

दशा साधन विधि – अभिजित् रहित 27 नक्षत्रों में कृत्तिका से जन्म नक्षत्र गणना करें। तत्संख्या में 9 का भाग देने पर शेष निम्नोक्त क्रम से विंशोत्तरी दशेश होते है। अर्थात् 1 शेष बचे तो सूर्य, 2 शेष बचे तो चन्द्रमा, 5 शेष बचे तो गुरू 8 शेष बचे तो केतु व 0 शेष बचे तो शुक्र की दशा होती है। इसी प्रकार अन्य को भी जानना चाहिए।

बोध प्रश्न -

1. विंशोत्तरी दशा होती है।
   क. १२० वर्ष की ख. १०८ वर्ष की ग. ३६ वर्ष की घ. २० वर्ष की
2. सूर्य की दशा वर्ष होती है।
   क. १० वर्ष ख.६ वर्ष ग.१८ वर्ष घ.२० वर्ष
3. विंशोत्तरी दशा का प्रचलन कहाँ है।

क. उत्तर भारत ख. दक्षिण भारत ग. पूर्वोत्तर भारत में घ. एशिया में

4. दशाओं के क्रम भौम के पश्चात् किसकी दशा होती है।

   क. राहु ख. गुरु ग. सूर्य घ. शनि

5. शनि की दशा वर्ष है।

   क. १८ वर्ष ख.१९ वर्ष ग.२० वर्ष घ.७ वर्ष

6. पराशर मतानुसार दशाओं में श्रेष्ठ है –

   क. अष्टोत्तरी ख. विंशोत्तरी ग. योगिनी घ. कोई नहीं

7. विंशोत्तरी दशाओं की गणना किस नक्षत्र से आरम्भ होती है।

   क. अश्विनी ख. भरणी ग. कृत्तिका घ. रोहिणी

1.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि ऋषियों ने त्रिकाल (भूत, वर्तमान तथा भविष्य) का शुभाशुभ जानने के लिए दशा का निर्माण किया है। दशा अनेक प्रकार की होती है। उनमें विंशोत्तरी, अष्टोत्तरी तथा योगिनी का प्रचार विशेष है। सामान्यतया दशा का शाब्दिक अर्थ है – काल की स्थिति। कालानुरोधेन किसी जातक के ऊपर क्या-क्या प्रभाव पड़ेगा। इसका ज्ञान दशाओं के माध्यम से ही किया जाता है। वर्तमान समय में देश के पूर्वोत्तर प्रदेश तथा राजस्थान में प्राय: विंशोत्तरी दशा का उपयोग विशेष रूप से करते हैं। सिन्ध, पंजाबादि में योगिनी दशा तथा दक्षिण मध्य भारत तथा गुजरात में अष्टोत्तरी दशा को व्यवहार में विशेष रूप से ग्रहण करते हैं। परन्तु शास्त्रीय वचन इस विषय में कुछ भिन्न एवं अनेक है-**दशाप्यष्टोत्तरी शुक्ले कृष्णे विंशोत्तरी मता। (मानसागरी ग्रन्थानुसार)** अर्थात् शुक्ल पक्ष में जन्म हो तो अष्टोत्तरी दशा तथा कृष्ण पक्ष में जन्म हो तो विंशोत्तरी दशा लेनी चाहिए।**दशा विंशोत्तरी चात्र ग्राह्या नाष्टोत्तरी मता।** (लघुपराशरी के अनुसार) नक्षत्र पर से साधित दशा विंशोत्तरी ही लेनी चाहिए। अष्टोत्तरी दशा नहीं। इसी श्लोक का पाठान्तर प्राचीन विद्वानों के घर में हस्त लिखित ग्रन्थों में निम्नलिखित मिलता है। दशा विंशोत्तरी ग्राह्या मता चाष्टोत्तरी तथा विंशोत्तरी दोनों दशायें फलाफल के विचार के लिए उपयुक्त हैं।

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

विंशोत्तरी दशा – सूर्यादि ग्रहों की १२० की दशा।

दशा – स्थिति

कृत्तिका – तीसरा नक्षत्र का नाम

समारम्भ – आरम्भ अर्थ में।

आर – मंगल

त्रिकोण – ५ एवं ९ स्थान को त्रिकोण कहते है।

नवमांश – राशि का नवॉ अंश नवमांश कहलाता है। ३ अंश २० कला १ नवमांश का मान होता है।

1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क
2. ख
3. ग
4. क
5. ख
6. ख
7. ग

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय कुण्डली विज्ञान - मीठालाल ओझा।
2. जातकपारिजात – दशाध्याय:।
3. वृहत्पराशरहोराशास्त्र – दशाध्याय:।
4. सारावली – दशाध्याय:।
5. सर्वार्थचिन्तामणि – दशाध्याय:।
6. फलदीपिका – दशाध्याय:।

1.8 सहायक पाठ्यसामग्री

1. फलदीपिका – मूल लेखक – आचार्य मन्त्रेश्वर। टिकाकार – गोपेश ओझा।
2. सारावली – मूल लेखक – कल्याणवर्मा। टिकाकार- मुरलीधर चतुर्वेदी।
3. वृहज्जातकम् – मूल लेखक – वराहमिहिर, टिकाकार- आचार्य सत्येन्द्र मिश्र।
4. लघुजातकम् – मूल लेखक – वराहमिहिर, टिकाकार – कमलाकान्त पाण्डेय।

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विंशोत्तरी दशा साधन का परिचय दीजिये।
2. स्वकल्पित विंशोत्तरी दशा साधन कीजिये।
3. दशा साधन का गणितीय पक्ष का लेखन कीजिये।
4. दशा साधन का महत्व बतलाइये।
5. सभी ग्रहों का दशा मान लिखकर स्पष्ट कीजिये।

इकाई – 2 अष्टोत्तरी दशा साधन

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 अष्टोत्तरी दशा परिचय
2.4 अष्टोत्तरी दशा साधन प्रकार
2.5 सारांश
2.6 पारिभाषिक शब्दावली
2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.9 सहायक पाठ्यसामग्री
2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई MAJY-602 के द्वितीय खण्ड की दूसरी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – अष्टोत्तरी दशा साधन। इससे पूर्व आपने विंशोत्तरी दशा साधन का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में अष्टोत्तरी दशा साधन के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

अष्टोत्तरी दशा प्राय: विन्ध्य से दक्षिण अर्थात् दक्षिण भारत में प्रचलित है। इसकी कुल दशा वर्ष १०८ वर्ष की होती है। यह विंशोत्तरी से भिन्न होता है।

आइए इस इकाई में हम लोग 'अष्टोत्तरी दशा साधन' के बारे में उसकी गणितीय सिद्धान्तों को जानने का प्रयास करते है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- अष्टोत्तरी दशा को परिभाषित कर सकेंगे।
- ग्रहों की आयु दशा वर्ष से परिचित हो जायेंगे।
- अष्टोत्तरी दशा का साधन कर सकेंगे।
- अष्टोत्तरी दशा के महत्व को बता सकेंगे।

2.3 अष्टोत्तरी दशा परिचय

विंशोत्तरी के पश्चात् अब अष्टोत्तरी दशा का ज्ञान करते है। सर्वप्रथम आपको यह जानना चाहिए कि अष्टोत्तरी दशा १०८ वर्षों की होती है। इनका क्रम विंशोत्तरी दशा से भिन्न है। इसमें सूर्य, चन्द्र, मंगल,बुध, शनि, गुरु, राहु एवं शुक्र इन आठ ग्रहों की दशा रहती है। यहाँ केतु की दशा नहीं होती। इन ग्रहों के दशा नक्षत्र विंशोत्तरी से भिन्न हैं, जो कि महादशा कोष्ठक में वर्ष संख्या के साथ दिये गये हैं। इस महादशा में ग्रहों के दशावर्ष नक्षत्रों में विभाजित रहते हैं। यथा – सूर्य महादशा वर्ष ६ हैं और इस दशा के नक्षत्र आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य तथा आश्लेषा ये चार हैं। ६ में ४ का भाग देने से एक नक्षत्र का वर्षादिदशामान १।६ यह होगा।

दशा का भुक्त भोग्य लाने के लिए यह क्रम है कि नक्षत्र के भयात भभोग पर से उस नक्षत्र का भुक्त भोग्य वर्षादि में साधन करें। यदि वह नक्षत्र बीच में पड़े, तब गत नक्षत्रों के वर्षादि योग में वर्तमान दशा नक्षत्र के भुक्त वर्षादि जोड़ने से उस ग्रह की भुक्त दशा होगी और उसको ग्रह दशा वर्ष में घटाने से उस ग्रह की भोग्य दशा शेष रहेगी। जैसे माना कि जातक का जन्म मृगशिरा नक्षत्र में है। यह शुक्र महादशा में तृतीय नक्षत्र है और एक नक्षत्र के वर्ष ७ हैं। इस पर से भयात भभोग द्वारा भुक्त

वर्ष विंशोत्तरी के समान साधन करने से लब्धि ३।२।११।५३।३७ हुआ। इसको गत दो नक्षत्रों के वर्षमान १४ में जोड़ा, तब शुक्र की महादशा के भुक्त वर्ष १७।२।११।५३।३७ हुए। अर्थात् लब्धि में इस दशा के गत दो नक्षत्रों के सात-सात वर्ष जोड़ने से शुक्र की भुक्त दशा वर्षादि १७।२।११।५३।५७ हुई। इनको २१ वर्ष में घटाने से शेष ३।९।१८।६।२३ से भोग्य वर्ष हुए। इस प्रकार इस दशा का साधन किया जाता है।

अष्टोत्तरी दशा का साधन –

इसकी अन्तर्दशा का साधन भी विंशोत्तरी के समा नही है। वहाँ पर जिस ग्रह की दशा में जिस ग्रह की अन्तर्दशा का साधन करना रहता है। उन दोनों के दशा वर्षों का गुणा कर दस का भाग देते हैं। यहाँ पर ९ का और शेष विधि सब उसी प्रकार है।

लग्नेशात् केन्द्रकोणस्थे राहौ लग्नं विना स्थिते।
अष्टोत्तरी दशा विप्र! विज्ञेया रौद्रभादितः।।
चतुष्कं त्रितयं तस्मात् चतुष्कं त्रितयं पुनः।
एवं स्वजन्मभं यावद् विगणय्य यथाक्रमम्।।
सूर्यश्चन्द्रः कुजः सौम्यः शनिर्जीवस्तमो भृगुः।
एते दशाधिपा विप्र ज्ञेयाः केतुं विना ग्रहाः।।
रसाः पंचेन्दवो नागाः सप्तचन्द्राश्च खेन्दवः।
गोऽब्जाः सूर्याः कुनेत्राश्च रव्यादीनां दशासमाः।।

श्लोकार्थ है कि यदि लग्नाधिप से राहु लग्न को छोड़कर अन्य केन्द्र त्रिकोण स्थान में बैठा हो तो अष्टोत्तरी दशा ग्रहण करनी चाहिए, ऐसा कुछ प्राचीनाचार्यों का मत है। उस अष्टोत्तरी में आर्द्रा से ४ नक्षत्राधिप सूर्य, अनन्तर के नक्षत्र चन्द्र, पश्चात् के ४ नक्षत्र भौम, उसके बाद ३ नक्षत्र बुध, अनन्तर के ४ नक्षत्र शनि, उसके पश्चात् ३ नक्षत्र गुरु , पुन: ४ नक्षत्र राहु उसके बाद ३ नक्षत्र शुक्र- इस प्रकार गणना कर अपना जन्मनक्षत्र जिस ग्रह में पड़े, वहीं प्रारम्भकालिक जन्मदशा होगी। दशावर्ष में रवि का ६, चन्द्र का १५ भौम का ८, बुध का १७, शनि १०, गुरु का १९, राहु का १२ वर्ष और शुक्र का २१ वर्ष है। इस प्रकार केतु को छोड़कर शेष ८ ग्रह ही दशाधिपति होते है।

अष्टोत्तरी दशा बोधक चक्र –

दशाधिप	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	शनि	गुरु	राहु	शुक्र
दशावर्ष	६	१५	८	१७	१०	१९	१२	२१
नक्षत्र	आ. पु. पु. आश.	म. पू.फा. उ.फा	ह. चि. स्वा. वि	अनु. ज्ये. मू.	पू.षा. उ.षा अभि. श्र.	घ. श. पू.भा.	उ.भा. रे. अ. भ.	कृ. रो. मृ.

2.4 अष्टोत्तरी दशा साधन प्रकार –

दशाब्दांघ्रि पापानां शुभानां त्र्यंश एव हि।
एकैकभे दशामानं विज्ञेयं द्विजसत्तम्।।
ततस्तद्याभोगाभ्यां भुक्तं भोग्यं च साधयेत्।
विंशोत्तरीवदेवात्र ततस्तत्फलमादिशेत्।।

अर्थात् पूर्व में जो ग्रहों की दशावर्ष संख्या कही गयी है, उसमें से पाप ग्रहों के दशामान के चतुर्थांश एक-एक नक्षत्र में दशावर्ष होते है। शुभ ग्रहों में तृतीयांश एक-एक नक्षत्र में दशामान होते है। इस प्रकार अपने जन्मनक्षत्र में जो दशा हो और उसका जो भी दशामान उत्पन्न हो उस पर से भयात, भभोग के माध्यम से विंशोत्तरी के अनुरूप दशा का भुक्त भोग्य वर्षादि साधन करना चाहिए।

विशेष – यदि उत्तराषाढ़ा में जन्म हो तो उत्तराषाढ़ा के प्रथम, द्वितीय, तथा तृतीय चरणों का योग करके उसको भभोग मानकर दशा का भुक्त भोग्य वर्षादि साधन करना चाहिए एवं उत्तराषाढ़ा के चतुर्थ चरण में या श्रवण के १५ वें भाग के प्रारम्भ काल में जन्म हो तो उत्तराषाढा के चतुर्थ चरण तथा श्रवण के १५ वें भाग का योग करके जो हो, उसे भभोग मान कर दशा का भुक्त भोग्य वर्षादि साधन करना चाहिए। यदि श्रवण में जन्म हो तो १५ वाँ भाग श्रवण के भभोग में घटाकर शेष को भभोग मानकर दशा का भुक्त भोग्य वर्षादि साधन करना चाहिए। उत्तराषाढ़ा के चतुर्थ चरण और श्रवण का १५ वाँ भाग मिला कर अभिजित नामक नक्षत्र होता है।

उदाहरण –

जैसे उत्तराषाढ़ा का सम्पूर्ण मान – ६०।१६ है। भयात २०।८ है तो उत्तराषाढ़ा के द्वितीय चरण में जन्म हुआ। उत्तराषाढ़ा के कुल भोग मान ६०।१६ में इसके चतुर्थांश १५।४ को (६०।१६ - १५।४) घटाने से ४५।१२ होता है, यही भभोग हुआ तथा २०।८ भयात् हुआ। उत्तराषाढ़ा शनि का द्वितीय नक्षत्र है। उसका मान ३० मास है, क्योंकि शनि के ४ नक्षत्र में १० वर्ष (१२० मास) हैं तो १ नक्षत्र में क्या? इस प्रकार ३० मास आता है। अत: यदि ३० मास से विंशोत्तरी दशानयनवत् भयात् २०।८ पलात्मक १२०८ को ३० मास से गुणा किया तो ३६२४० हुआ। इसमें पलात्मक २७१२ भभोग से भभोग से भाग देने से लब्ध मासादि १३।१०।५३ यह भुक्त हुआ। इसको ३० में घटाने से लब्ध मासादि शनि का १६।१९।७ भोग्य हुआ। इसमें अभिजित् तथा श्रवण नक्षत्र के ३०-३० मास जोड़ने से मासादि ७६।१९।७ हुए। पुन: इसको वर्षादि बनाने से ६।४।१९।७ यह मान हुआ। यही अष्टोत्तरी दशा में शनि का भोग्य वर्षादि मान हुआ।

तदनुसार अष्टोत्तरी दशा चक्र –

दशाधिप	शनि	गुरु	राहु	शुक्र	सू.	चन्द्र	मंगल	बुध	
वर्ष	६	१९	१२	२१	६	१५	८	१७	
मास	४								
दिन	१९								
घटी	७								
संवत्	२०४९	२०५५	२०७४	२०८६	२१०७	२११३	२१२८	२१३६	२१५३
सू.रा.	४	९	९	९	९	९	९	९	९
सू.अं.	१८	७	७	७	७	७	७	७	७
सू.क.	१५	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२

कृष्णपक्षे दिवा जन्म शुक्लपक्षे तथा निशि।
तदा ह्यष्टोत्तरी चिन्तया फलार्थंच विशेषत:।।

अर्थात् कृष्ण पक्ष में दिन में एवं शुक्ल पक्ष में रात्रि का जन्म हो तो विशेष फल ज्ञान हेतु अष्टोत्तरी दशा का विचार करना चाहिए।

विशेष – उत्तराषाढ़ा, अभिजित् और श्रवण में जन्म हो तो तभी पूर्व प्रकार से दशा का भुक्त-भोग्य का वचिार करना है। इन नक्षत्रों से भिन्न नक्षत्रों में पूर्ण भभोग पर से ही दशा साधन करना चाहिए। अष्टोत्तरी तथा षष्टिहायनी दशा में अभिजित नक्षत्र का ग्रहण किया जाता है, अन्य दशाओं में नहीं। इसका ध्यान रखना चाहिए।

उत्तराषाढ़ा से भिन्न नक्षत्र शतभिषा का भुक्त भोग्य का उदाहरण अष्टोत्तरी दशा में इस प्रकार है। माना कि भयात् १९।१५, भभोग ६६।३२ शतभिषा के द्वितीय चरण का जन्म है। शतभिषा गुरु का दूसरा नक्षत्र है। गुरु की दशा १९ वर्ष की है। अत: १९ × १२ ÷ =७६ मास एक नक्षत्र का मान हुआ। अत: १९।१५ भयात्ए पलात्मक ११५५

११५५ ×७६ = ८७७८० हुआ। इसको पलमय ३९९२ भभोग से भाग दिया तो लब्धि २१।२९।४० भुक्त मासादि हुआ। इसको ७६ मास में घटाया तो शतभिषा नक्षत्र का ५४।०।२० भोग्य मासादि हुए। इसमें पूर्व भाद्रपद का ७६ मास जोड़कर वर्षादि बनाने पर १०।१०।०।२० भोग्य वर्षादि मान हुआ।

तदनुसार अष्टोत्तरी दशा चक्र –

दशाधिप	गुरु	राहु	शुक्र	सू.	चन्द्र	मंगल	बुध	शनि	
वर्ष	१०	१२	२१	६	१५	८	१७	१०	
मास	१०								
दिन	०								
घटी	२०								
संवत्	२०४९	२०६०	२०७२	२०९३	२०९९	२११४	२१२२	२१३९	२१४९
सू.रा.	६	६	६	६	६	६	६	६	६
सू.अं.	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८
सू.क.	१	१	१	१	१	१	१	१	१

इसी प्रकार अन्य नक्षत्रों का भी अष्टोत्तरी दशानयन करना चाहिए। प्रत्येक ग्रहों की अष्टोत्तरी महादशी के अन्तर्गत आने वाली दशाओं का वर्ष मान निम्न सूचियों में दी गयी है। आप उसका अवलोकन कर ज्ञान प्राप्त करने के साथ ही अलग-अलग ग्रहों की अष्टोत्तरी दशाओं का मान ज्ञात कर सकते हैं।

अष्टोत्तरी दशा बोधक चक्र -

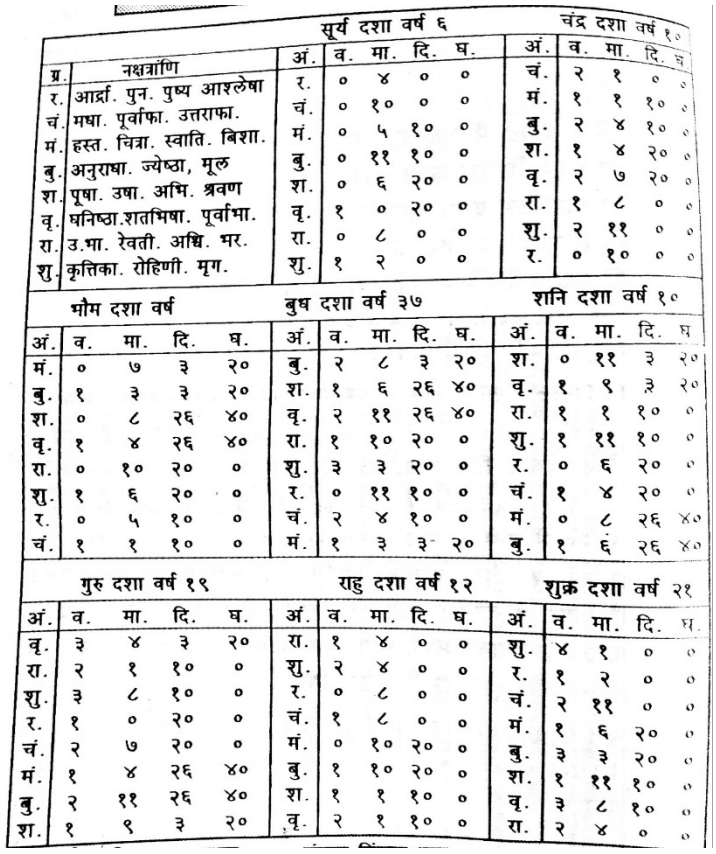

सूर्य दशा वर्ष ६

ग्र.	नक्षत्राणि
र.	आर्द्रा. पुन. पुष्य आश्लेषा
चं.	मघा. पूर्वाफा. उत्तराफा.
मं.	हस्त. चित्रा. स्वाति. बिशा.
बु.	अनुराधा. ज्येष्ठा, मूल
श.	पूषा. उषा. अभि. श्रवण
वृ.	घनिष्ठा.शतभिषा. पूर्वाभा.
रा.	उ.भा. रेवती. अश्वि. भर.
शु.	कृत्तिका. रोहिणी. मृग.

अं.	व.	मा.	दि.	घ.
र.	०	४	०	०
चं.	०	१०	०	०
मं.	०	५	१०	०
बु.	०	११	१०	०
श.	०	६	२०	०
वृ.	१	०	२०	०
रा.	०	८	०	०
शु.	१	२	०	०

चंद्र दशा वर्ष १०

अं.	व.	मा.	दि.	घ
चं.	२	१	०	०
मं.	१	१	१०	०
बु.	२	४	१०	०
श.	१	४	२०	०
वृ.	२	७	२०	०
रा.	१	८	०	०
शु.	२	११	०	०
र.	०	१०	०	०

भौम दशा वर्ष

अं.	व.	मा.	दि.	घ.
मं.	०	७	३	२०
बु.	१	३	३	२०
श.	०	८	२६	४०
वृ.	१	४	२६	४०
रा.	०	१०	२०	०
शु.	१	६	२०	०
र.	०	५	१०	०
चं.	१	१	१०	०

बुध दशा वर्ष ३७

अं.	व.	मा.	दि.	घ.
बु.	२	८	३	२०
श.	१	६	२६	४०
वृ.	२	११	२६	४०
रा.	१	१०	२०	०
शु.	३	३	२०	०
र.	०	११	१०	०
चं.	२	४	१०	०
मं.	१	३	३	२०

शनि दशा वर्ष १०

अं.	व.	मा.	दि.	घ
श.	०	११	३	२०
वृ.	१	९	३	२०
रा.	१	१	१०	०
शु.	१	११	१०	०
र.	०	६	२०	०
चं.	१	४	२०	०
मं.	०	८	२६	४०
बु.	१	६	२६	४०

गुरु दशा वर्ष १९

अं.	व.	मा.	दि.	घ.
वृ.	३	४	३	२०
रा.	२	१	१०	०
शु.	३	८	१०	०
र.	१	०	२०	०
चं.	२	७	२०	०
मं.	१	४	२६	४०
बु.	२	११	२६	४०
श.	१	९	३	२०

राहु दशा वर्ष १२

अं.	व.	मा.	दि.	घ.
रा.	१	४	०	०
शु.	२	४	०	०
र.	०	८	०	०
चं.	१	८	०	०
मं.	०	१०	२०	०
बु.	१	१०	२०	०
श.	१	१	१०	०
वृ.	२	१	१०	०

शुक्र दशा वर्ष २१

अं.	व.	मा.	दि.	घ.
शु.	४	१	०	०
र.	१	२	०	०
चं.	२	११	०	०
मं.	१	६	२०	०
बु.	३	३	२०	०
श.	१	११	१०	०
वृ.	३	८	१०	०
रा.	२	४	०	०

अथाष्टोत्तरी सूर्यमहादशायामन्तरेषु सर्वेषां प्रत्यन्तराणि

अथ सूर्यान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	र.	चं.	मं.	बु.	श.	वृ.	रा.	शु.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	०
मा.	०	०	०	०	०	०	०	०	४
दि.	६	१६	८	१८	११	२१	१३	२३	०
घ.	४०	४०	५३	५३	६	६	२०	२०	०
प.	०	०	२०	२०	४०	४०	०	०	०
वि.	०	०	०	०	०	०	०	०	०

अथ चन्द्रान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	चं.	मं.	बु.	श.	वृ.	रा.	शु.	र.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	०
मा.	१	०	१	०	१	१	१	०	१०
दि.	११	२२	१७	२७	२२	३	२८	१६	०
घ.	४०	१३	१३	४६	४६	२०	२०	४०	०
प.	०	२०	२०	४०	४०	०	०	०	०
वि.	०	०	०	०	०	०	०	०	०

अथ भौमान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	मं.	बु.	श.	वृ.	रा.	शु.	र.	च.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	०
मा.	०	०	०	०	०	१	०	०	५
दि.	११	२५	१४	२८	१७	१	८	२२	१०
घ.	५१	११	४८	८	४६	६	५३	१३	०
प.	६	६	५३	५३	४०	४०	२०	२०	०
वि.	४०	४०	२०	२०	०	०	०	०	०

अथ बुधान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	बु.	श.	वृ.	रा.	शु.	र.	चं.	मं.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	०
मा.	१	१	१	१	२	०	१	०	११
दि.	२३	१	२९	७	६	१८	१७	२५	१०
घ.	३१	२८	४८	४६	६	५३	१३	११	०
प.	६	५३	५३	४०	४०	२०	२०	६	०
वि.	४०	०	०	०	०	२०	२०	४०	०

अथ शन्यन्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	श.	वृ.	रा.	शु.	र.	चं.	मं.	बु.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	०
मा.	०	१	०	१	०	०	०	१	६
दि.	१८	५	२२	८	११	२७	१४	१	२०
घ.	३१	११	१३	५३	६	४६	४८	२८	०
प.	६	६	२०	२०	४०	४०	५३	५३	०
वि.	४०	४०	०	०	०	०	२०	२०	०

अथ गुर्वन्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	वृ.	रा.	शु.	र.	चं.	मं.	बु.	श.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	१
मा.	२	१	२	०	१	०	१	१	०
दि.	६	१२	१३	२१	२२	२८	२९	५	२०
घ.	५१	१३	५३	६	४६	८	४०	११	०
प.	६	२०	२०	४०	४०	५३	५३	६	०
वि.	४०	०	०	०	०	२०	२०	४०	०

अथ राह्वन्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	रा.	शु.	र.	चं.	मं.	बु.	श.	वृ.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	०
मा.	०	१	०	१	०	१	०	१	८
दि.	२६	१६	१३	३	१७	७	२२	१२	०
घ.	४०	४०	२०	२०	४६	४६	१३	१३	०
प.	०	०	०	०	४०	४०	२०	२०	०
वि.	०	०	०	०	०	०	०	०	०

अथ शुक्रान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	शु.	र.	चं.	मं.	बु.	श.	वृ.	रा.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	१
मा.	२	०	१	१	२	१	२	१	२
दि.	२१	२३	२८	१	६	८	१३	१६	०
घ.	४०	२०	२०	६	६	५३	५३	४०	०
प.	०	०	०	४०	४०	२०	२०	०	०
वि.	०	०	०	०	०	०	०	०	०

अथाष्टोत्तरी भौममहादशायामन्तरेषु सर्वेषां प्रत्यन्तराणि

अथ भौमान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	मं.	बु.	श.	वृ.	रा.	शु.	र.	चं.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	०
मा.	०	१	०	१	०	१	०	०	७
दि.	१५	३	१९	७	२३	११	११	२९	३
घ.	४८	३४	४५	३१	४२	२८	५१	३७	२०
प.	८	४८	११	५१	१३	५३	६	४६	०
वि.	५३	५३	७	७	२०	२०	४०	४०	०

अथ बुधान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	बु.	श.	वृ.	रा.	शु.	र.	चं.	मं.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	१
मा.	२	१	२	१	२	०	२	१	३
दि.	११	११	१९	२०	२८	२५	२	३	३
घ.	२१	५८	४५	२२	८	११	५७	३४	२०
प.	५८	३१	११	१३	५३	६	४६	४८	०
वि.	५३	७	७	२०	२०	४०	४०	५३	०

अथ शन्यन्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	श.	वृ.	रा.	शु.	र.	चं.	मं.	बु.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	०
मा.	०	१	०	१	०	१	०	१	८
दि.	२४	१६	२९	२१	१४	७	१९	१२	२६
घ.	४१	५४	३७	५१	४८	२	४५	५८	४०
प.	२८	४८	४६	६	५३	१३	११	३१	०
वि.	५३	५३	४०	४०	२०	२०	७	७	०

अथ गुर्वन्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	वृ.	रा.	शु.	र.	च.	मं.	बु.	श.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	१
मा.	२	१	३	०	२	१	२	१	४
दि.	२९	२६	८	२८	१०	७	१९	१६	२६
घ.	८	१७	३१	८	२२	३१	४५	५४	४०
प.	८	४६	६	५३	१३	५१	११	४८	०
वि.	५३	४०	४०	२०	२०	७	७	५३	०

अथ राह्वन्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	रा.	शु.	र.	चं	मं.	बु.	श.	वृ.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	०
मा.	१	२	०	१	०	१	०	१	८
दि.	५	२	१७	१४	२३	२०	२९	२६	२०
घ.	३३	१३	४६	२६	४२	२२	३७	१७	०
प.	२०	२०	४०	४०	१३	१३	४६	४६	०
वि.	०	०	०	०	२०	२०	४०	४०	०

अथ शुक्रान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	शु.	र.	चं.	मं.	बु.	श.	वृ.	रा.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	१
मा.	३	१	२	१	२	१	३	२	६
दि.	१८	१	१७	११	२८	२१	८	२	२०
घ.	५३	६	४६	२८	८	५१	३१	१३	०
प.	२०	४०	४०	५३	५३	६	६	२०	०
वि.	०	०	०	२०	२०	४०	४०	०	०

अथ सूर्यान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	र.	चं.	मं.	बु.	श.	वृ.	रा.	शु.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	०
मा.	०	०	०	०	०	०	०	१	५
दि.	८	२२	११	२५	१४	२८	१७	१	१०
घ.	५३	१३	५१	११	४८	८	४६	६	०
प.	२०	२०	६	६	५३	५३	४०	४०	०
वि.	०	०	४०	४०	२०	२०	०	०	०

अथ चन्द्रान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	चं.	मं.	बु.	श.	वृ.	रा.	शु.	र.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	१
मा.	१	०	२	१	२	१	०	०	१
दि.	२५	२९	२	७	१०	१४	१७	२२	१०
घ.	३३	३७	५७	२	२२	२६	४६	१३	०
प.	२०	४६	४६	१३	१३	४०	४०	२०	०
वि.	०	४०	४०	२०	२०	०	०	०	०

अथाष्टोत्तरी शनिमहादशायामन्तरेषु सर्वेषां प्रत्यन्तराणि

अथ शन्यन्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	श.	वृ.	रा.	शु.	र.	चं.	मं.	बु.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	०
मा.	१	१	१	२	०	१	०	१	११
दि.	०	२८	७	४	१८	१६	२४	२२	३
घ.	५१	३८	२	४८	३१	१७	४१	२८	२०
प.	५१	३१	१३	५३	६	४६	२८	८	०
वि.	७	७	२०	२०	४०	४०	५३	५३	०

अथ गुर्वन्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	वृ.	रा.	शु.	र.	चं.	मं.	बु.	श.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	१
मा.	३	२	४	१	२	१	३	१	९
दि.	२१	१०	३	५	२७	१६	९	२८	३
घ.	२५	२२	८	११	५७	५४	४१	३८	२०
प.	११	१३	५३	३	४६	४८	२८	३१	०
वि.	७	२०	२०	४०	४०	५३	५३	७	०

अथ राह्वन्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	रा.	शु.	र.	चं.	मं.	बु.	श.	वृ.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	१
मा.	१	२	०	१	०	२	१	२	१
दि.	१४	१७	२२	२५	२९	२	७	१०	१०
घ.	२६	४६	१३	३३	३७	५७	२	२२	०
प.	४०	४०	२०	२०	४६	४६	१३	१३	०
वि.	०	०	०	०	४०	४०	२०	२०	०

अथ शुक्रान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	शु.	र.	चं.	मं.	बु.	श.	वृ.	रा.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	०
मा.	०	१	३	१	३	२	४	२	११
दि.	४	८	७	२१	२०	४	३	१७	१०
घ.	१६	५३	१३	५०	११	४८	८	४६	०
प.	६	२०	२०	६	६	५३	५३	४०	०
वि.	४०	०	०	४०	४०	२०	२०	०	०

अथ सूर्यान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	र.	चं.	मं.	बु.	श.	वृ.	रा.	शु.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	०
मा.	०	०	०	१	०	१	०	१	६
दि.	११	२७	१४	१	२८	५	२२	८	२०
घ.	६	४६	४८	२८	३१	११	१३	५३	०
प.	४०	४०	५३	५३	६	६	२०	२०	०
वि.	०	०	२०	२०	४०	४०	०	०	०

अथ चन्द्रान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	चं.	मं.	बु.	श.	वृ.	रा.	शु.	र.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	१
मा.	२	१	२	१	२	१	३	०	४
दि.	९	७	१८	१६	२७	२५	७	२७	२०
घ.	२६	२	४२	१७	५७	३३	१३	४६	०
प.	४०	१३	१३	४६	४६	२०	२०	४०	०
वि.	०	२०	२०	४०	४०	०	०	०	०

अथ भौमान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	मं.	बु.	श.	वृ.	रा.	शु.	र.	चं.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	०
मा.	०	१	०	१	०	१	०	१	८
दि.	१९	११	२४	१६	२९	२१	१४	७	२६
घ.	४५	५८	४१	५४	३७	५१	४८	२	४०
प.	११	३१	२८	४८	४६	६	५३	१३	०
वि.	७	७	५३	५३	४०	४०	२०	२०	०

अथ बुधान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	बु.	श.	वृ.	रा.	शु.	र.	चं.	मं.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	१
मा.	२	१	३	२	३	१	२	१	६
दि.	२९	२२	९	२	२०	१	१८	११	२६
घ.	११	२८	४१	५७	११	२८	४२	५८	४०
प.	५१	८	२८	४६	६	५३	१३	३१	०
वि.	७	५३	५३	४०	४०	२०	२०	७	०

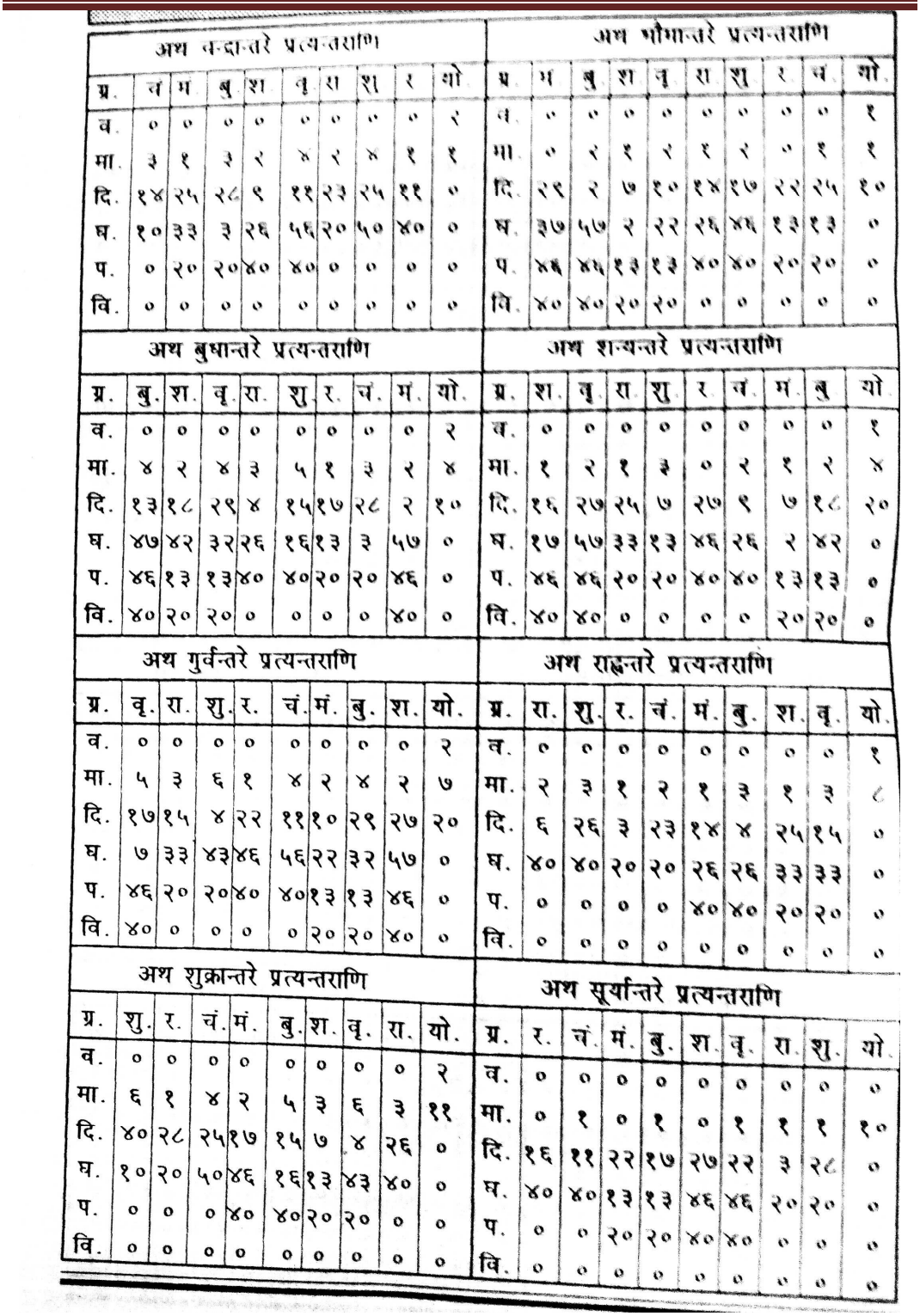

अथ चन्द्रान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	च.	म.	बु.	श.	वृ.	रा.	शु.	र.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	२
मा.	३	१	३	२	४	२	४	१	१
दि.	१४	२५	२८	९	११	२३	२५	११	०
घ.	१०	३३	३	२६	५६	२०	५०	४०	०
प.	०	२०	२०	४०	४०	०	०	०	०
वि.	०	०	०	०	०	०	०	०	०

अथ भौमान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	म.	बु.	श.	वृ.	रा.	शु.	र.	च.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	१
मा.	०	२	१	२	१	२	०	१	१
दि.	२९	२	७	१०	१४	१७	२२	२५	१०
घ.	३७	५७	२	२२	२६	४६	१३	१३	०
प.	४६	४६	१३	१३	४०	४०	२०	२०	०
वि.	४०	४०	२०	२०	०	०	०	०	०

अथ बुधान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	बु.	श.	वृ.	रा.	शु.	र.	च.	मं.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	२
मा.	४	२	४	३	५	१	३	२	४
दि.	१३	१८	२९	४	१५	१७	२८	२	१०
घ.	४७	४२	३२	२६	१६	१३	३	५७	०
प.	४६	१३	१३	४०	४०	२०	२०	४६	०
वि.	४०	२०	२०	०	०	०	०	४०	०

अथ शन्यन्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	श.	वृ.	रा.	शु.	र.	च.	मं.	बु.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	१
मा.	१	२	१	३	०	२	१	२	४
दि.	१६	२७	२५	७	२७	९	७	१८	२०
घ.	१७	५७	३३	१३	४६	२६	२	४२	०
प.	४६	४६	२०	२०	४०	४०	१३	१३	०
वि.	४०	४०	०	०	०	०	२०	२०	०

अथ गुर्वन्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	वृ.	रा.	शु.	र.	चं.	मं.	बु.	श.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	२
मा.	५	३	६	१	४	२	४	२	७
दि.	१७	१५	४	२२	११	१०	२९	२७	२०
घ.	७	३३	४३	४६	५६	२२	३२	५७	०
प.	४६	२०	२०	४०	४०	१३	१३	४६	०
वि.	४०	०	०	०	०	२०	२०	४०	०

अथ राह्वन्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	रा.	शु.	र.	चं.	मं.	बु.	श.	वृ.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	१
मा.	२	३	१	२	१	३	१	३	८
दि.	६	२६	३	२३	१४	४	२५	१५	०
घ.	४०	४०	२०	२०	२६	२६	३३	३३	०
प.	०	०	०	०	४०	४०	२०	२०	०
वि.	०	०	०	०	०	०	०	०	०

अथ शुक्रान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	शु.	र.	चं.	मं.	बु.	श.	वृ.	रा.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	२
मा.	६	१	४	२	५	३	६	३	११
दि.	४०	२८	२५	१७	१५	७	४	२६	०
घ.	१०	२०	५०	४६	१६	१३	४३	४०	०
प.	०	०	०	४०	४०	२०	२०	०	०
वि.	०	०	०	०	०	०	०	०	०

अथ सूर्यान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	र.	चं.	मं.	बु.	श.	वृ.	रा.	शु.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	०
मा.	०	१	०	१	०	१	१	१	१०
दि.	१६	११	२२	१७	२७	२२	३	२८	०
घ.	४०	४०	१३	१३	४६	४६	२०	२०	०
प.	०	०	२०	२०	४०	४०	०	०	०
वि.	०	०	०	०	०	०	०	०	०

अथाष्टोत्तरी राहुमहादशायामन्तरेषु सर्वेषां प्रत्यन्तराणि

अथ राह्वन्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	रा.	शु.	र.	चं.	मं.	बु.	श.	वृ.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	१
मा.	१	३	०	२	१	२	१	२	४
दि.	२३	३	२६	६	५	१५	१४	२४	०
घ.	२०	२०	४०	४०	३३	३३	२६	२६	०
प.	०	०	०	०	२०	२०	४०	४०	०
वि.	०	०	०	०	०	०	०	०	०

अथ शुक्रान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	शु.	र.	चं.	मं.	बु.	श.	वृ.	रा.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	२
मा.	५	१	३	२	४	२	४	३	४
दि.	१३	१६	२६	२	१२	१७	२७	३	०
घ.	२०	४०	४०	१३	१३	४६	४६	२०	०
प.	०	०	०	२०	२०	४०	४०	०	०
वि.	०	०	०	०	०	०	०	०	०

अथ सूर्यान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	र.	चं.	मं.	बु.	श.	वृ.	रा.	शु.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	०
मा.	०	१	०	१	२	१	०	१	८
दि.	१३	३	१७	७	२२	१२	२६	१६	०
घ.	१०	२०	४६	४६	१३	१३	४०	४०	०
प.	०	०	४०	४०	२०	२०	०	०	०
वि.	०	०	०	०	०	०	०	०	०

अथ चन्द्रान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	चं.	मं.	बु.	श.	वृ.	रा.	शु.	र.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	१
मा.	२	१	३	१	३	२	३	१	८
दि.	२३	१४	४	१५	१५	६	२६	३	०
घ.	२०	२६	२६	३३	३३	४०	४०	२०	०
प.	०	४०	४०	२०	२०	०	०	०	०
वि.	०	०	०	०	०	०	०	०	०

अथ भौमान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	मं.	बु.	श.	वृ.	रा.	शु.	र.	चं.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	०
मा.	०	१	०	१	१	२	०	१	१०
दि.	२३	२०	२९	२६	५	२	१७	१४	२०
घ.	४२	२२	३७	१७	३३	१३	४६	२६	०
प.	१३	१३	४६	४६	२०	२०	४०	४०	०
वि.	२०	२०	४०	४०	०	०	०	०	०

अथ बुधान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	बु.	श.	वृ.	रा.	शु.	र.	चं.	मं.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	१
मा.	३	२	३	२	४	१	३	१	१०
दि.	१७	२	२९	१५	१२	७	४	२०	२०
घ.	२	५७	३७	३३	१३	४६	२६	२२	०
प.	१३	४६	४६	२०	२०	४०	४०	१३	०
वि.	२०	४०	४०	०	०	०	०	२०	०

अथ शन्यन्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	श.	वृ.	रा.	शु.	र.	चं.	मं	बु.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	१
मा.	१	२	१	२	०	१	०	२	१
दि.	७	१०	१४	१७	२२	२५	२९	२	१०
घ.	२	२२	२६	४६	१३	३३	३७	५७	०
प.	१३	१३	४०	४०	२०	२०	४६	४६	०
वि.	२०	२०	०	०	०	०	४०	४०	०

अथ बुधान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	वृ.	रा.	शु.	र.	चं.	मं.	बु.	श.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	२
मा.	४	२	४	१	३	१	३	२	१
दि.	१३	२४	२७	१२	१५	२६	२९	१०	१०
घ.	४२	२६	४६	१३	३३	१७	३७	२२	०
प.	१३	४०	४०	२०	२०	४६	४६	१३	०
वि.	२०	०	०	०	०	४०	४०	२०	०

अथाष्टोत्तरी बुधमहादशायामन्तरेषु सर्वेषां प्रत्यन्तराणि

अथ बुधान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	बु.	श.	बृ.	रा.	शु.	र.	च.	मं.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	२
मा.	५	२	५	३	६	१	४	२	८
दि.	१	२९	१९	१७	७	२३	१३	११	३
घ.	३८	११	२८	२	१८	३१	४७	२१	२०
प.	८	५१	३१	१३	५३	६	४६	२८	०
वि.	५३	७	८	२०	२०	४०	४०	५३	०

अथ शन्यन्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	श.	वृ.	रा.	शु.	र.	च.	मं.	बु.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	१
मा.	१	३	२	३	१	२	१	२	६
दि.	२२	९	२	२०	१	१८	११	२९	२६
घ.	२८	४१	५७	११	२८	४२	५८	११	४०
प.	८	२८	४६	६	५३	१३	३१	५१	०
वि.	५३	५३	४०	४०	२०	२०	७	७	०

अथ गुर्वन्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	वृ.	रा.	शु.	र.	चं.	मं.	बु.	श.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	२
मा.	६	३	६	१	४	२	५	३	११
दि.	९	२९	२९	२९	२९	१९	१९	९	२६
घ.	२४	३७	२१	४८	३२	४५	२८	४१	४०
प.	४८	४६	६	५३	१३	११	३१	२८	०
वि.	५३	४०	४०	२०	२०	७	७	५३	०

अथ राह्वन्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	रा.	शु.	र.	चं.	मं.	बु.	श.	वृ.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	१
मा.	२	४	१	३	१	३	२	३	१०
दि.	१५	१२	७	४	२०	१७	२	२९	२०
घ.	३३	१३	४६	२६	२२	२	५७	३७	०
प.	२०	२०	४०	४०	१३	१३	४६	४६	०
वि.	०	०	०	०	२०	२०	४०	४०	०

अथ शुक्रान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	शु.	र.	चं.	मं.	बु.	श.	वृ.	रा.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	३
मा.	७	२	५	२	६	३	६	४	३
दि.	२१	६	१५	२८	७	२०	२९	१२	२०
घ.	२३	६	१६	८	१८	११	२१	१३	०
प.	२०	४०	४३	५३	५३	६	६	२०	०
वि.	०	०	०	२०	२०	४०	४०	०	०

अथ सूर्यान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	र.	चं.	मं.	बु.	श.	वृ.	रा.	शु.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	०
मा.	०	१	०	१	१	१	१	२	११
दि.	१८	१७	२५	२३	१	२९	७	६	१०
घ.	५३	१३	११	३१	२८	४८	४६	६	०
प.	२०	२०	६	६	५३	५३	४०	४०	०
वि.	०	०	४०	४०	२०	२०	०	०	०

अथ चन्द्रान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	चं.	मं.	बु.	श.	वृ.	रा.	शु.	र.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	२
मा.	३	२	४	२	४	३	५	१	४
दि.	२८	२	१३	२८	२९	४	१५	१७	२०
घ.	३	५७	१७	४२	३२	२६	१६	१३	०
प.	२०	४६	४६	१३	१३	४०	४०	२०	०
वि.	०	४०	४०	२०	२०	०	०	०	०

अथ भौमान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	मं.	बु.	श.	वृ.	रा.	शु.	र.	चं.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	१
मा.	१	२	१	२	१	२	०	२	३
दि.	३	११	११	१९	२०	२८	२५	२	३
घ.	३४	२१	५८	४५	२२	८	११	५७	२०
प.	४८	२८	३१	११	१३	५३	६	६	०
वि.	५३	५३	७	७	२०	२०	४०	४०	०

अथाष्टोत्तरी गुरुमहादशायामन्तरेषु सर्वेषां प्रत्यन्तराणि

अथ गुर्वन्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	वृ.	रा.	शु.	र.	चं.	मं.	बु.	श.	यो.
व.	०	०		०	०	०	०	०	३
मा.	७	४	७	२	५	२	६	३	४
दि.	१	१३	२३	६	१७	२९	९	२१	३
घ.	४१	४२	५८	५१	७	८	२४	२५	२०
प.	५१	१३	५३	६	४६	८	४८	११	०
वि.	७	२०	२०	४०	४०	५३	५३	७	२

अथ राह्वन्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	रा.	शु.	र.	चं.	मं.	बु.	श.	वृ.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	२
मा.	२	४	१	३	१	३	२	४	१
दि.	२४	२७	१२	१५	२६	२९	१०	१३	१०
घ.	२६	४६	१३	३३	१७	३७	२२	४२	०
प.	४०	४०	२०	२०	४६	४६	१३	१३	०
वि.	०	०	०	०	४०	४०	२०	२०	०

अथ शुक्रान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	शु.	र.	चं.	मं.	बु.	श.	वृ.	रा.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	३
मा.	८	२	६	३	६	४	७	४	८
दि.	१८	१३	४	८	२९	३	२३	२७	१०
घ.	३६	५३	४३	३१	२१	८	५३	४६	०
प.	४०	२०	२०	६	६	५३	५८	४०	०
वि.	०	०	०	४०	४०	२०	२०	०	०

अथ सूर्यान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	र.	चं.	मं.	बु.	श.	वृ.	रा.	शु.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	१
मा.	०	१	०	१	१	२	१	२	०
दि.	२१	२२	२८	२९	५	६	१२	१३	२०
घ.	६	४६	८	४८	११	५१	१३	५३	०
प.	४०	४०	५३	५३	६	६	२०	२०	०
वि.	०	०	२०	२०	४०	४०	०	०	०

अथ चन्द्रान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	चं.	मं.	बु.	श.	वृ.	रा.	शु.	र.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	२
मा.	४	२	४	२	५	३	६	१	७
दि.	११	१०	२९	२७	१७	१५	४	२२	२०
घ.	५६	२२	३२	५७	७	३३	४३	४६	०
प.	४०	१३	१३	४६	४६	२०	२०	४०	०
वि.	०	२०	२०	४०	४०	०	०	०	०

अथ भौमान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	मं.	बु.	श.	वृ.	रा.	शु.	र.	चं.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	१
मा.	१	२	१	२	१	३	०	२	४
दि.	७	१९	१६	२९	२६	८	२८	१०	२६
घ.	३१	४५	५४	८	१७	३१	८	२२	४०
प.	५३	११	४८	८	४६	६	५३	१३	०
वि.	७	७	५३	५३	४०	४०	२०	२०	०

अथ बुधान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	बु.	श.	वृ.	रा.	शु.	र.	चं.	मं.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	२
मा.	५	३	६	३	६	१	४	२	११
दि.	१९	९	९	२९	२९	२९	२९	१९	२६
घ.	२८	४१	२४	३७	२१	४८	३२	४५	४०
प.	३१	२८	४८	४६	६	५३	१३	११	०
वि.	७	५३	५३	४०	४०	२०	२०	७	०

अथ शन्यन्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	श.	वृ.	रा.	शु.	र.	चं.	मं.	बु.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	१
मा.	१	३	२	४	१	२	१	३	९
दि.	२८	२१	१०	३	५	२७	१६	९	३
घ.	३८	२५	२३	८	११	५७	५४	४१	२०
प.	३१	११	१३	५३	६	४६	४८	२८	०
वि.	७	७	२०	२०	४०	४०	५३	५३	०

अथाष्टोत्तरी शुक्रमहादशायामन्तरेषु सर्वेषां प्रत्यन्तराणि

अथ शुक्रान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	शु.	र.	चं.	मं.	बु.	श.	वृ.	रा.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मा.	९	२	६	३	७	४	८	५	१
दि.	१५	२१	२४	१८	२१	१६	१६	१३	०
घ.	५०	४०	१०	५३	२३	६	३८	२०	०
प.	०	०	०	२०	२०	४०	४०	०	०
वि.	०	०	०	०	०	०	०	०	०

अथ सूर्यान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	र.	चं.	मं.	बु.	श.	वृ.	रा.	शु.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	१
मा.	०	१	१	२	१	२	१	२	२
दि.	२३	२८	१	६	८	१३	१६	२१	०
घ.	२०	२०	६	६	५३	५३	४०	४०	०
प.	०	०	४०	४०	२०	२०	०	०	०
वि.	०	०	०	०	०	०	०	०	०

अथ चंद्रान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	चं.	मं.	बु.	श.	वृ.	रा.	शु.	र.	योग
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	२
मा.	४	२	५	३	६	३	६	१	११
दि.	२५	१७	१५	७	४	२६	२४	२८	०
घ.	५०	४६	१६	१३	४३	४०	१०	२०	०
प.	०	४०	४०	२०	२०	०	०	०	०
वि.	०	०	०	०	०	०	०	०	०

अथ भौमान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	मं.	बु.	श.	वृ.	रा.	शु.	र.	चं.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	१
मा.	१	२	१	३	२	३	१	२	६
दि.	११	२८	२१	८	२	१८	१	१७	२०
घ.	२८	८	५१	३१	१३	५३	६	४६	०
प.	५३	५३	६	६	२०	२०	४०	४०	०
वि.	२०	२०	४०	४०	०	०	०	०	०

अथ बुधान्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	बु.	श.	वृ.	रा.	शु.	र.	चं.	मं.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	३
मा.	६	३	६	३	७	२	५	२	३
दि.	१७	२०	२९	१२	२१	६	१५	२८	२०
घ.	१८	११	२१	१३	२३	६	१६	८	०
प.	५३	६	६	२०	२०	४०	४०	५३	०
वि.	२०	४०	४०	०	०	०	०	२०	०

अथ शन्यन्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	श.	वृ.	रा.	शु.	र.	चं.	मं.	बु.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	१
मा.	२	४	२	४	१	३	१	३	११
दि.	४	३	१७	१६	८	७	२१	२०	१०
घ.	४८	८	४६	६	५३	५३	५१	११	०
प.	५३	५३	४०	४०	२०	२०	६	६	०
वि.	२०	२०	०	०	०	०	४०	४०	०

अथ गुर्वन्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	वृ.	रा.	शु.	र.	चं.	मं.	बु.	श.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	३
मा.	७	४	८	२	६	३	६	४	८
दि.	२३	२७	१८	१३	४	८	२९	३	१०
घ.	५८	४६	३६	५३	४३	४१	२१	८	०
प.	५३	४०	४०	२०	२०	६	६	५३	०
वि.	२०	०	०	०	०	४०	४०	२०	०

अथ राह्वन्तरे प्रत्यन्तराणि

ग्र.	रा.	शु.	र.	चं.	मं.	बु.	श.	वृ.	यो.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	२
मा.	३	५	१	३	२	४	२	४	४
दि.	३	१३	१६	२६	२	१२	१७	२७	०
घ.	२०	२०	४०	४०	१३	१३	४६	४६	०
प.	०	०	०	०	२०	२०	४०	४०	०
वि.	०	०	०	०	०	०	०	०	०

बोध प्रश्न -

1. अष्टोत्तरी दशा होती है।
   क. १२० वर्ष की ख. १०८ वर्ष की ग. ३६ वर्ष की घ. २० वर्ष की
2. अष्टोत्तरी दशाओं में शुक्र की दशा वर्ष होती है।
   क.१० वर्ष ख.६ वर्ष ग.१८ वर्ष घ.२१ वर्ष
3. अष्टोत्तरी दशा का प्रचलन कहाँ है।
   क. उत्तर भारत ख. दक्षिण भारत ग. पूर्वोत्तर भारत में घ. एशिया में
4. अष्टोत्तरी दशाओं के क्रम भौम के पश्चात् किसकी दशा होती है।
   क. बुध ख. गुरु ग. सूर्य घ. शनि
5. अष्टोत्तरी दशाओं में निम्न में किस ग्रह की दशा नहीं होती है।
   क. राहु ख. शनि ग. केतु घ.गुरु
6. सूर्य महादशा में कुल कितने नक्षत्र होते है।
   क.३ ख. ४ ग. ५ घ. ६
7. अष्टोत्तरी दशाओं की गणना किस नक्षत्र से आरम्भ होती है।
   क.आर्द्रा ख. भरणी ग. कृत्तिका घ. रोहिणी

2.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि अष्टोत्तरी दशा १०८ वर्षों की होती है। इनका क्रम विंशोत्तरी दशा से भिन्न है। इसमें सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, शनि, गुरु, राहु एवं शुक्र इन आठ ग्रहों की दशा रहती है। यहाँ केतु की दशा नहीं होती। इन ग्रहों के दशा नक्षत्र विंशोत्तरी से भिन्न हैं, जो कि महादशा कोष्ठक में वर्ष संख्या के साथ दिये गये हैं। इस महादशा में ग्रहों के दशावर्ष नक्षत्रों में विभाजित रहते हैं। यथा – सूर्य महादशा वर्ष ६ हैं और इस दशा के नक्षत्र आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य तथा आश्लेषा ये चार हैं। ६ में ४ का भाग देने से एक नक्षत्र का वर्षादिदशामान १।६ यह होगा। दशा का भुक्त भोग्य लाने के लिए यह क्रम है कि नक्षत्र के भयात भभोग पर से उस नक्षत्र का भुक्त भोग्य वर्षादि में साधन करें। यदि वह नक्षत्र बीच में पड़े, तब गत नक्षत्रों के वर्षादि योग में वर्तमान दशा नक्षत्र के भुक्त वर्षादि जोड़ने से उस ग्रह की भुक्त दशा होगी और उसको ग्रह दशा वर्ष में घटाने से उस ग्रह की भोग्य दशा शेष रहेगी। जैसे माना कि जातक का जन्म मृगशिरा नक्षत्र में है। यह

शुक्र महादशा में तृतीय नक्षत्र है और एक नक्षत्र के वर्ष ७ हैं। इस पर से भयात भभोग द्वारा भुक्त वर्ष विंशोत्तरी के समान साधन करने से लब्धि ३।२।११।५३।३७ हुआ। इसको गत दो नक्षत्रों के वर्षमान १४ में जोड़ा, तब शुक्र की महादशा के भुक्त वर्ष १७।२।११।५३।३७ हुए। अर्थात् लब्धि में इस दशा के गत दो नक्षत्रों के सात-सात वर्ष जोड़ने से शुक्र की भुक्त दशा वर्षादि १७।२।११।५३।५७ हुई। इनको २१ वर्ष में घटाने से शेष ३।९।१८।६।२३ से भोग्य वर्ष हुए। इस प्रकार इस दशा का साधन किया जाता है।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

अष्टोत्तरी दशा – सूर्यादि ग्रहों की १०८ वर्षों की दशा केतु को छोड़कर।

दशा – स्थिति

आर्द्रा – छठा नक्षत्र का नाम

भयात – सम्पूर्ण नक्षत्र के मान में से जितना मान बित गया हो उसका नाम भयात है।

भभोग – सम्पूर्ण नक्षत्र के मान में से जितना मान शेष हो व्यतीत होने के लिए उसका नाम भभोग है।

त्रिकोण – ५ एवं ९ स्थान को त्रिकोण कहते है।

अभिजित – उत्तराषाढा एवं श्रवण नक्षत्र के अंश से बना नक्षत्र का नाम अभिजित है।

2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ख
2. घ
3. ख
4. क
5. ग
6. ख
7. क

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय कुण्डली विज्ञान - मीठालाल ओझा।
2. जातकपारिजात – दशाध्याय:।
3. वृहत्पराशरहोराशास्त्र – दशाध्याय:।

4. सारावली – दशाध्याय:।

5. सर्वार्थचिन्तामणि – दशाध्याय:।

6. फलदीपिका – दशाध्याय:।

2.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. फलदीपिका – मूल लेखक – आचार्य मन्त्रेश्वर। टिकाकार – गोपेश ओझा।

2. सारावली – मूल लेखक – कल्याणवर्मा। टिकाकार- मुरलीधर चतुर्वेदी।

3. वृहज्जातकम् – मूल लेखक – वराहमिहिर, टिकाकार- आचार्य सत्येन्द्र मिश्र।

4. लघुजातकम् – मूल लेखक – वराहमिहिर, टिकाकार – कमलाकान्त पाण्डेय।

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अष्टोत्तरी दशा साधन का परिचय दीजिये।

2. स्वकल्पित अष्टोत्तरी दशा का साधन कीजिये।

3. अष्टोत्तरी दशा साधन का गणितीय पक्ष का लेखन कीजिये।

4. अष्टोत्तरी एवं विंशोत्तरी महादशा साधन में अन्तर बतलाइये।

इकाई - 3 योगिनी दशा साधन

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 योगिनी दशा परिचय
3.4 योगिनी दशा साधन
3.5 सारांश
3.6 पारिभाषिक शब्दावली
3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.9 सहायक पाठ्यसामग्री
3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई MAJY-602 के द्वितीय खण्ड की तीसरी इकाई से सम्बन्धित है जिसका शीर्षक है – योगिनी दशा साधन। इससे पूर्व आपने विंशोत्तरी एवं अष्टोत्तरी दशा साधन का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में योगिनी दशा साधन के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

योगिनी दशा कुल ३६ वर्ष की होती है। उसके पश्चात् उसका पुन: चक्र का भ्रमण होता है। मंगलादि आठ योगिनी दशा कहे गये है। इसका प्रचलन पर्वतीय क्षेत्रों के साथ-साथ राजस्थान, गुजरात में भी अधिक होता है।

आइए इस इकाई में हम लोग 'योगिनी दशा साधन' के बारे में उसकी गणितीय सिद्धान्तों को जानने का प्रयास करते है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- योगिनी दशा को परिभाषित कर सकेंगे।
- योगिनी की आयु दशा वर्ष से परिचित हो जायेंगे।
- योगिनी दशा का साधन कर सकेंगे।
- योगिनी दशा के महत्व को बता सकेंगे।

3.3 योगिनी दशा परिचय

योगिनी दशाओं के बारे में ऐसा कहा जाता है कि स्वयं भगवान शिव ने इस दशा को कहा था। **मंगला, पिंगला, धान्या, भ्रामरी, भद्रिका, उल्का, सिद्धा, संकटा** – ये **आठ योगिनी** दशा होती है। मंगला से चन्द्रमा, पिंगला से सूर्य, धान्या से गुरू, भ्रामरी से मंगल, भद्रिका से बुध, उल्का से शनि, सिद्धा से शुक्र और संकटा से राहु की उत्पत्ति है। जन्मनक्षत्र संख्या में 3 जोड़कर 8 का भाग देने पर एकादि शेष से मंगलादि योगिनी दशायें होती है। मंगलादि योगिनी दशावर्ष एकादि वर्ष जानना चाहिये अर्थात् 1,2,3,4,5,6,7,8 क्रम से वर्ष जानना चाहिये । जन्मकालिक भयात् भभोग के द्वारा दशा के भुक्त, भोग्य वर्षादि का साधन करना चाहिये।

योगिनी दशा बोधक मूल श्लोक: -

मंगला पिंगला धान्या भ्रामरी भद्रिका तथा।
उल्का सिद्धा संकटा च योगिन्योऽष्टौ प्रकीर्तिता:।।
मंगलातोऽभवच्चन्द्र: पिंगलातो दिवाकर:।

धन्यातो देवपूज्योऽभूद् भ्रामरीतोऽभवत् कुजः।।
भद्रिकातो बुधो जातस्तथोल्कातः शनैश्चरः।
सिद्धातो भार्गवी जातः संकटातस्तमोऽभवत्।।
जन्मर्क्षं च त्रिभिर्युक्तं वसुभिर्भागमाहरेत्।
एकादिशेषे विज्ञेया योगिन्यो मंगलादिका।।
एकाद्येकोत्तरा ज्ञेयाः क्रमादासां दशासमाः।
नक्षत्रयातभोगाभ्यां भुक्तं भोग्यं च साधयेत्।।

अन्य प्रकार से योगिनी दशा विचार –

मंगला पिंगला धान्या भ्रामरी भद्रिका तथा।
उल्का सिद्धा संकटा च एतासां नामवत्फलम् ।।
एकं द्वौ गुणवेदबाणरससप्ताष्टांकसंख्याः क्रमात्।
स्वीयस्वीयदशा विपाकसमये ज्ञेयं शुभं वाऽशुभम्।।
षट्विंशैर्विभजेद्दिनीकृतमथैकद्वित्रिवेदेषुषट्।
सप्ताष्टघ्नदशा भवेयुरिति ता एवं दशान्तर्दशाः।।
चन्द्रः सूर्यो वाक्पतिर्भूमिपुत्रश्चान्द्रिर्मन्दो भार्गवः सैहिकेयः।
एते नाथा मंगलादिप्रदिष्टाः सौम्याः सौम्यानामनिष्टाः खलानाम्।।

अत्रप्रकारान्तरेण योगिनीनां स्वामिनाः -

पिंगलातो भवेत्सूर्यो मंगलातो निशाकरः।
भ्रामरीतो भवेत्क्ष्माजो धान्यतोऽभूद्बिधोः सुतः।।
भद्रिकातो गुरूरभूतिसद्धातः कविसम्भवः।
उल्कातो भानुतनयः संकटास्त्वभूत्तमः।।
अस्या एव दशान्ते च केतुरेवं विधीयते।
यः खेटोऽस्तगृहं तथारिभवनं नीचं प्रयातो यथा।।
वर्षेशाद्रिपुगो हि तस्य गदिता सर्वा दशा मध्यमा।
यश्चोस्थलमाश्रितः स्वभवने मूलत्रिकोणे खगो।।
मित्रागारमुपागतो निगदिता तस्याऽखिला सौख्यदा।

उपर्युक्त श्लोक में मंगलादि आठ योगिनीयों के नाम है, तथा प्रकारान्तर से उनके स्वामियों का नाम भी उल्लेखित गया है। योगिनी दशा का न्यूनाधिक रूप से सारे भारतवर्ष में विशेषकर पर्वतीय क्षेत्रों में तो बहुत प्रचार है। इन दशाओं का प्रणेता भगवान शिव को माना जाता है। वृहत्पराशरहोराशास्त्र में

आचार्य पराशर के द्वारा प्रतिपादित है कि मंगला से चन्द्रमा, पिंगला से सूर्य, धान्या से गुरू, भ्रामरी से मंगल, भद्रिका से बुध, उल्का से शनि, सिद्धा से शुक्र और संकटा से राहु की उत्पत्ति है, इसका आशय है कि इन योगिनियों के ये ग्रह प्रभावक माने जाते है। जब मंगला की दशा हो तो चन्द्र की दशा समझकर जन्म लग्न में चन्द्रमा की स्थिति के अनुसार दशा को उत्तम, या अधम कल्याणकारी मानना चाहिये। इसी प्रकार अन्य योगिनियों के विषय में भी समझना चाहिये।

जन्म नक्षत्र में 3 जोड़कर 8 का भाग देने से शेष के अनुसार मंगला से योगिनी दशा होती है। भ्रामरी दशा के नीचे से प्रारम्भ कर अश्विनी आदि नक्षत्रों को क्रमश: लिखने से योगिनी दशा चक्र होता है। इसमें अभिजित् का ग्रहण नहीं है। इनके 1,2,3,4,5,6,7,8 क्रमश: दशा वर्ष होते है।

योगिनी दशा के विषय में माना जाता है कि अल्पायु लोगों के जीवन में इसकी एक आवृत्ति, मध्यायु लोगों को दो आवृत्ति तथा दीर्घायु लोगों को तीन आवृत्ति होती है। इसकी एक आवृत्ति 36 वर्षों की होती है।

दशा का भुक्त भोग्य काल ज्ञान पूर्व में प्रतिपादित किया गया है। एक और उदाहरण के लिये यहॉ समझाया जा रहा है।

जन्म नक्षत्र रेवती से आर्द्रादि क्रमानुसार राहु की दशा वर्तमान है। सजातीय भयात 1250 व भभोग 3905 पल है। भयात 1250 व भभो्र 3905 पल है। भयात 1250 × दशावर्ष 12 = 15000/ पलात्मक भभोग 3905 = 3 वर्ष 10 मास 2 दिन भुक्त है। इसे 12 वर्षों में से घटाया तो 8.01.28 वर्षादि राहु का अष्टोत्तरी दशा भोग्य है।

योगिनी दशा बोध चक्र

	मंगला	पिंगला	धान्या	भ्रामरी	भद्रिका	उल्का	सिद्धा	संकटा
स्वामी	चन्द्रमा	सूर्य	गुरू	मंगल	बुध	शनि	शुक्र	राहु
वर्ष	1	2	3	4	5	6	7	8
नक्षत्र				अश्विनी	भरणी	कृत्तिका	रोहिणी	मृगशिरा
	आर्द्रा	पुनर्वसु	पुष्य	आश्लेषा	मघा	पू0फा0	उ0फा0	हस्त
	चित्रा	स्वाती	विशाखा	अनुराधा	ज्येष्ठा	मूल	पू0षा0	उ0षा0
	श्रवण	धनिष्ठा	शतभिषा	पू0भा0	उ0भा0	रेवती		

चन्द्रस्पष्ट 11.20^0 .55 तथा रेवती का अंशात्मक भोग्य 9^0 .05 अर्थात् 545 कला भोग्य है। इसे दशा वर्ष 12 से गुणाकर 800 कला का पूर्ववत् भाग देने से 545 × 12 = 6540 ÷ 800 = भोग्य दशा 8.02;03 वर्षादि है। यह दिनों का अन्तर क्यों पड़ा, इस विषय में पूर्व में विशोंतरी महादशा के दौरान लिखा जा चुका है। पाठक गण वहॉ ध्यान दें। इसी पद्धति से योगिनी दशा का भुक्त भोग्य भी जाना जा सकता है।

3.4 योगिनी दशा साधन उदाहरण –

माना कि किसी जातक का जन्म हस्त नक्षत्र के प्रथम चरण में हुआ हैं, अत: जन्मनक्षत्र से 13 + 3 = 16। इसमें आठ का भाग दिया तो शेष 0 बचा अर्थात 8 हुआ, अत: आठवीं संकटा की दशा में जन्म हुआ, संकटा के वर्षमान 8 है। हस्त नक्षत्र भयात 16।5 भभोग 65।20 प्रथम चरण में जन्म है । पलात्मक भयात 965 को आठ से गुणनकर पलात्मक भभोग 3920 से भाग दिया, लब्ध भुक्त वर्षादि 1।11।19 को 8 में घटानें पर 6।0।11 भोग्य वर्षादि सिद्ध हुये। इस प्रकार योगिनी दशा का साधन किया जाता है।

योगिनी के महादशा व अन्तर्दशा का कोष्ठक –

मंगला दशा एक वर्ष – अन्तर्दशा

योगिनी	मंगला	पिंगला	धान्या	भ्रामरी	भद्रिका	उल्का	सिद्धा	संकटा
वर्ष	0	0	0	0	0	0	0	0
मास	0	0	1	1	1	2	2	2
दिन	10	20	0	10	20	0	10	20

पिंगला दशा दो वर्ष – अन्तर्दशा

योगिनी	पिंगला	धान्या	भ्रामरी	भद्रिका	उल्का	सिद्धा	संकटा	मंगला
वर्ष	0	0	0	0	0	0	0	0
मास	1	2	2	3	4	4	5	0
दिन	10	2	20	10	1	20	10	20

धान्या दशा तीन वर्ष – अन्तर्दशा

योगिनी	धान्या	भ्रामरी	भद्रिका	उल्का	सिद्धा	संकटा	मंगला	पिंगला
वर्ष	0	0	0	0	0	0	0	0
मास	3	4	5	6	7	8	1	2
दिन	0	0	0	0	0	0	0	0

भ्रामरी दशा चार वर्ष – अन्तर्दशा

योगिनी	भ्रामरी	भद्रिका	उल्का	सिद्धा	संकटा	मंगला	पिंगला	धान्या
वर्ष	0	0	0	0	0	0	0	0
मास	5	6	8	9	10	1	2	4
दिन	10	20	0	10	20	10	20	0

भद्रिका दशा पॉच वर्ष – अन्तर्दशा

योगिनी	भद्रिका	उल्का	सिद्धा	संकटा	मंगला	पिंगला	धान्या	भ्रामरी
वर्ष	0	0	0	1	0	0	0	0
मास	8	10	11	1	1	3	5	6
दिन	10	0	20	10	10	10	0	20

उल्का दशा छ: वर्ष – अन्तर्दशा

योगिनी	उल्का	सिद्धा	संकटा	मंगला	पिंगला	धान्या	भ्रामरी	भद्रिका
वर्ष	1	1	1	0	0	0	0	0
मास	0	2	4	2	4	6	8	10
दिन	0	0	0	0	0	0	0	0

सिद्धा दशा सात वर्ष – अन्तर्दशा

योगिनी	सिद्धा	संकटा	मंगला	पिंगला	धान्या	भ्रामरी	भद्रिका	उल्का
वर्ष	1	1	0	0	0	0	0	1
मास	4	6	2	4	7	9	11	2
दिन	10	20	10	20	0	10	20	0

संकटा दशा आठ वर्ष – अन्तर्दशा

योगिनी	संकटा	मंगला	पिंगला	धान्या	भ्रामरी	भद्रिका	उल्का	सिद्धा
वर्ष	1	0	0	0	0	1	1	1
मास	9	2	5	8	10	1	4	6
दिन	10	20	10	0	20	10	0	20

3.5 बोध प्रश्न –

1. योगिनी दशा सर्वप्रथम किसके द्वारा कहा गया था।

क. विष्णु के द्वारा ख. ब्रह्मा के द्वारा ग. प्रजापति के द्वारा घ. शिव के द्वारा

2. योगिनी दशा कुल कितने वर्षों का होता है।

क. 30 वर्ष ख. 34 वर्ष ग. 36 वर्ष घ. 40 वर्ष

3. निम्नलिखित में सिद्धा से उत्पत्ति है –

क. बुध की ख. मंगल की ग. शुक्र की घ. सूर्य की

4. योगिनी दशा क्रम में पिंगला के पश्चात् आता है।

क. भ्रामरी ख. मंगला ग. सिद्धा घ. धान्या

5. मंगला का अर्थ है –

क. मंगल करने वाला ख. विपत्ति लाने वाला ग. नाश करने वाला घ. सुख प्रदान करने वाला

30 वर्ष ख. 34 वर्ष ग. 36 वर्ष घ. 40 वर्ष

दशा फल विचार के मौलिक नियम –

दशाफल विचार कि विषय में लघुपराशरी विद्याधरी में पाराशरीय नियमों का उल्लेख किया गया है। यहाँ केवल मौलिक व प्रारम्भिक सूत्र बताये जा रहे हैं, जो समस्त फल का आधार देते है –

शुभ फलप्रद दशा विचार –

1. पराशरीय मत से केन्द्रेशों व त्रिकोणेशों के सम्बन्ध पर आधारित सभी कारक ग्रहों की दशायें उत्कृष्ट फल देती है।
2. कारकों के सम्बन्धी ग्रहों की दशा में भी कारक ग्रहों का फल मिलता है। जैसे - कर्क लग्न का कारक मंगल यदि शनि से योग करता हो तो शनि की दशा में भी उत्कृष्ट फल मिलेंगे।
3. जो ग्रह जन्म समय में स्वोच्च, मूलत्रिकोण, स्वक्षेत्र, अधिमित्र क्षेत्र, मित्र क्षेत्र, शुभ ग्रह क्षेत्र में शुभ दृष्ट हो या षड्वर्गों के शुभ वर्गों में गया हो तो क्रमिक ह्रास से क्रमश: अच्छा ही फल देता है। उदाहरणार्थ यदि कोई ग्रह उच्च में है तो वह अत्यन्त शुभ फल करेगा लेकिन पापदृष्टि अशुभ भाव स्थिति आदि से उसकी शुभता में क्रमिक ह्रास होगा। इसके विपरीत कोई ग्रह साधारण सम ग्रह की राशि में है, लेकिन शुभ ग्रहों से दृष्ट, शुभ भावस्थिति है तो वह अत्यन्त शुभ फल देगा ही, इसमें क्या सन्देह है। इस प्रकार उहापोह पूर्वक महादशा का फल स्थिर किया जाता है। निसर्ग शुभ ग्रह प्राय: शुभ फलदायक होते है।

अशुभ दशा निर्णय -

1. उक्त तथ्यों के विपरीत होने पर दशा का फल अशुभ होगा। नीचगत, अस्तंगत, शत्रुक्षेत्री , अशुभ वर्गों में गया हुआ, पापदृष्ट तथा अशुभ भाव स्थित ग्रह की दशा अशुभ फल देती है।
2. पापी ग्रह वक्री भी हो तो उसकी दशा महान कष्टदायक होती है।
3. पाराशर मत से मारक ग्रहों की दशा कष्टप्रद होती है। तथा निसर्ग पापग्रह की दशा भी अशुभ फल ही देती है।

कुछ विशेष नियम –

1. दशा प्रवेश के समय यदि चन्द्रमा बलवान हो तथ अपनी जन्म राशि से शुभ गोचर भावों में हो तो महादशा का फल काफी बुरा होते हुये भी कुछ कम हो जाता है।
2. इसके विपरीत दशा प्रवेश कालीन चन्द्रमा की अशुभता व निर्बलता शुभ दशा के शुभ फल में कमी करेगी।

3. जो दशापति बलवान हों, वे अपनी दशा में अपना पूरा फल देते हैं। तथा बलहीन होकर कुछ भी फल देने में समर्थ नहीं होते है। मध्यम बली ग्रह का मध्य फल समझना चाहिये। उदाहरणार्थ – लग्नेश दशा नियमत: शुभ होनी चाहिये, लेकिन वह नीच अस्तंगत, अशुभवर्गी आदि होकर पाप पीड़ित हो तो कुछ भी विशेष शुभ फल अपनी दशा में नहीं दे सकेगा।
4. सामान्यत: राहुयुक्त ग्रह की दशा कष्टप्रद होती है तथा अन्त में विशेष शोक देती है। इसके विपरीत यदि राहु किसी योगकारक ग्रह के साथ स्थित हो अथवा उसी ग्रह की राशि में राहु हो तो अरिष्ट नहीं होता है।
5. अपने उच्च से आगे की राशियों में स्थित ग्रह सामान्यत: नीच राशि की ओर बढ़ने के कारण शुभ फल में क्रमिक कमी लाता है, लेकिन यदि शुभ नवमांश में हो तो वह अच्छे फल भी देता है।
6. इसी प्रकार उच्च राशि की ओर बढ़ता ग्रह सामान्यत: अच्छा फल देता है। लेकिन नवमांश लग्न में शत्रुक्षेत्री या नीच आदि होने पर उसकी शुभता कम हो जायेगी।
7. शुभ ग्रहों के मध्य में विद्यमान पाप ग्रह अशुभ फल नहीं देता तथा अशुभ ग्रहों के मध्य में स्थित शुभ ग्रह शुभ फल नहीं देता।
8. दशा प्रवेश के समय यदि दशेश या अर्न्तदशेश उच्च, त्रिकोण, स्वराशि में हो तो शुभ होता है। विपरीत स्थिति में अशुभ आदि होता है।
9. सभी पाप ग्रह दशा के शुरू में अपनी उच्चादि राशि के अनुसार उसके बाद में साथी या द्रष्टा गहों की प्रकृति के अनुसार तथा लगभग दशा काल के मध्य में स्थान या भावानुसार फल देते हैं एवं अन्त में प्राय: सभी पाप दशायें उपद्रव करती है।
10. प्राय: ग्रह जिस द्रेष्काण में स्थित हो, अपने दशा काल के भी उसी तृतीयांश में अपना फल विशेषतया देता है।

दशा फल में राहु केतु की विशेषता -

1. त्रिकोणस्थ राहु – केतु यदि 2,7 भावेशों के साथ हों तो मारक होते है।
2. त्रिकोणेशों से युत या दृष्ट यदि 2,7 भावों में हो तो आयु व धन वर्धक होते है।
3. द्विस्वभाव राशिगत राहु – केतु यदि त्रिकोणेशों से युक्त हो या राहु – केतु की अधिष्ठित राशियों के स्वामी त्रिकोणेशों से युक्त हों तो वे सदैव राज्य व धन देते है।
4. चर या स्थिर राशि गत राहु – केतु केन्द्र या त्रिकोण में स्थित हों ओर कारक ग्रहों से युक्त हो तो स्वदशा में विशेष समृद्धि देते है।

5. राहु – केतु अशुभ स्थानों में स्थित होकर भी कारक ग्रहों से युक्त हो तो शुभ फल एवं शुभ भावों में स्थित होकर भी मारक ग्रहों से युक्त हो तो मारक फल ही देंगे।

3.6 सारांश –

ज्योतिष शास्त्र में दशाओं का ज्ञान परमावश्यक है, दशा क्रम में विंशोत्तरी के पश्चात् योगिनी का नाम आता है। योगिनी दशा कुल 36 वर्ष का होता है। ये दशायें स्वनामानुसार अपना – अपना फल देते है। वस्तुत: प्रचलन के दृष्टिकोण से सर्वाधिक विंशोत्तरी एवं अष्टोत्तरी का ही विचार किया जाता है। परन्तु भारतवर्ष के कई प्रान्तों में योगिनी दशा का भी प्रचलन है । सर्वाधिक दशाओं का उल्लेख वृहत्पराशरहोराशास्त्र में आचार्य पराशर जी ने किया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आशा है कि पाठक गण योगिनी दशा का ज्ञान सुगमता पूर्वक प्राप्त कर सकेंगे।

3.7 पारिभाषिक शब्दावली

विंशोत्तरी – 120 वर्षों की दशा

अष्टोत्तरी – 108 वर्षों की दशा

योगिनी - 36 वर्षों की दशा

परस्पर – एक दूसरे का

3.8 बोधप्रश्न के उत्तर

1. घ
2. ग
3. ग
4. घ
5. क

3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वृहत्पराशरहोराशास्त्र - आचार्य पराशर
2. जातकपारिजात – आचार्य वैद्यनाथ
3. वृहज्ज्योतिसार – चौखम्भा प्रकाशन
4. ज्योतिष सर्वस्व – सुरेश चन्द्र मिश्र
5. वृहज्जातक – आचार्य वराहमिहिर

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. योगिनी दशा का उल्लेख करते हुये उसके फलादेश कर्त्तव्यादि का विस्तारपूर्वक उल्लेख करें।
2. ज्योतिषोक्त योगिनी दशा का क्या महत्व है तथा इसका सर्वाधिक प्रचलन कहॉ है।
3. योगिनी दशा से आप क्या समझते है।
4. योगिनी दशा का स्पष्ट रूप से साधन करें।
5. योगिनी दशा का महत्व प्रतिपादित कीजिये।

इकाई - 4 अन्तर्दशा एवं प्रत्यन्तर्दशा

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 अन्तर्दशा एवं प्रत्यन्तर्दशा परिचय
4.4 अन्तर्दशा एवं प्रत्यन्तर्दशा साधन
4.5 सारांश
4.6 पारिभाषिक शब्दावली
4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.9 सहायक पाठ्यसामग्री
4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई MAJY-602 के द्वितीय खण्ड की चौथी इकाई से सम्बन्धित है जिसका शीर्षक है – अन्तर्दशा एवं प्रत्यन्तर्दशा। इससे पूर्व आपने विंशोत्तरी एवं अष्टोत्तरी दशा तथा योगिनी दशाओं का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में अन्तर्दशा एवं प्रत्यन्तर्दशा दशा साधन के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

दशाओं के सूक्ष्म ज्ञानार्थ अन्तर्दशा एवं प्रत्यन्तर्दशा की आवश्यकता होती है। इसके ज्ञान से हम सूक्ष्म फलादेश करने में समर्थ हो पाते हैं।

अत: आइए इस इकाई में हम लोग 'अन्तर्दशा एवं प्रत्यन्तर्दशा दशा साधन' के बारे में तथा उसकी गणितीय सिद्धान्तों को जानने का प्रयास करते है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- अन्तर्दशा एवं प्रत्यन्तर्दशा दशा को परिभाषित कर सकेंगे।
- अन्तर्दशा एवं प्रत्यन्तर्दशा की आयु दशा वर्ष से परिचित हो जायेंगे।
- अन्तर्दशा एवं प्रत्यन्तर्दशा का साधन कर सकेंगे।
- अन्तर्दशा एवं प्रत्यन्तर्दशा के महत्व को बता सकेंगे।

4.3 अन्तर्दशा एवं प्रत्यन्तर्दशा विचार

दशा ज्ञान के क्रम में विंशोत्तरी, अष्टोत्तरी एवं योगिनी के पश्चात् अब आपको अन्तर्दशा के बारे में बताया जा रहा है। जिस ग्रह की महादशा में अन्तर्दशा अवगत करनी हो, उसकी वर्ष संख्या को अलग-अलग ग्रहों की वर्षसंख्या से गुणा करके सभी ग्रहों की वर्षसंख्या के योग से भाग देने से लब्धि पृथक-पृथक् अन्तर्दशा वर्षादिमान होते हैं। इसी प्रकार अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर ज्ञात करना अभीष्ट हो तो अन्तर्दशा मान को प्रत्येक ग्रह के दशा वर्ष से गुणाकर सभी ग्रहों के दशावर्ष योग से भाग देने से लब्धि पृथक-पृथक प्रत्यन्तर्दशा होती है। इसी प्रकार आगे की इकाई में सूक्ष्मदशा एवं प्राणदशा का भी आनयन किया जायेगा।

उदाहरण –

सूर्य की महादशा में सूर्यादि सभी ग्रहों की अन्तर्दशा यदि साधन करनी हो तो –

सूर्य की विंशोत्तरीय दशावर्ष संख्या ६ विंशोत्तरी मत से सभी ग्रहों के वर्षयोग – १२० है। अत: यहाँ नीचे सभी का गणितीय विधि से गणना कर अन्तर्दशाओं का ज्ञान करते हैं-

सूर्य - ६ × ६/ १२० = ०।३।१८

चन्द्र - ६ × १०/ १२० = ०।६।०

मंगल - ६ × ७/ १२० = ०।४।६

राहु - ६ × १८/ १२० = ०।१०।२४

गुरु - ६× १६/ १२० = ०।९।१८

शनि - ६ × १९/ १२० = ०।१।१२

बुध - ६ × १७/ १२० = ०।१०।६

केतु - ६ × ७/ १२० = ०।४।६

शुक्र - ६ × ६/ १२० = १।०।०

सूर्य की महादशा में सूर्यादि का अन्तर बोधक चक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	१
मास	३	६	४	१०	९	१	१०	४	०
दिन	१८	०	६	२४	१८	१२	६	६	०

इसी प्रकार अन्य ग्रहों की भी अन्तर्दशा गणित करके निकाली जा सकती है।

अन्तर्दशा क्रम –

आदावन्तर्दशा पाकपतेस्तत्क्रमतोऽपरा:।
एवं प्रत्यन्तरादौ च क्रमौ ज्ञेयो विचक्षणै:।।

किसी की भी दशा में प्रथम अन्तर्दशा स्वामी की होती है और उसके आगे क्रम से सभी ग्रहों की अन्तर्दशा होती है। प्रत्यन्तर,सूक्ष्म एवं प्राणदशा में भी यही क्रम जानना चाहिए।

चरादि दशाओं में ग्रहों की अन्तर्दशा –

भुक्तिर्नवानां तुल्या स्याद् विभाज्या नवधा दशा।
आदौ दशापतेर्भुक्तिस्तत्केन्द्रादियुजां तत:।।
विद्यात् क्रमेण भुक्त्यंशानेवं सूक्ष्मदशादिकम्।
बलक्रमात् फलं विज्ञैर्वक्तव्यं पूर्वरीतित:।।

अर्थात् ग्रहों की चरादि दशा या केन्द्रादि दशा में दशामान को ९ समान भाग करके अन्तर्दशा जाननी चाहिए। यहाँ प्रथम तो दशाधिप की ही अन्तर्दशा होगी, तदनन्तर केन्द्र स्थित ग्रहों की पुन: पणफरस्थ

ग्रहों की आपोक्लिमस्थ ग्रहों की अन्तर्दशा बलक्रम से होती है।

राशियों का अन्तर्दशा साधन -

कृत्वाऽर्कधा राशिदशां राशेर्भुक्तिं क्रमाद् वदेत्।
प्रत्यन्तर्शाद्येवं कृत्वा तत्फलं वदेत्।।

राशियों का जो दशावर्ष हो, उसको १२ से गुणा करने पर जो लब्धि हो, उतना ही प्रत्येक राशि का अन्तर्दशावर्ष होता है। इसी प्रकार अन्तर्दशा वर्ष में अनुपात से प्रत्यन्तर्दशा का भी ज्ञान करना चाहिए।

राशियों की अन्तर्दशा में क्रम –

आद्यसप्तमयोर्मध्ये यो राशिर्बलवाँस्ततः।
ओजे दशाश्रये गण्याः क्रमादुत्क्रमतः समे।।

अन्तर्दशा क्रम में प्रथम और सप्तम में से जो अधिक बली हो, उस राशि से अन्तर्दशा प्रारम्भ हो जाती है। प्रारम्भिक दशा विषम राशि की हो तो क्रम से और सम हो तो उत्क्रम से सभी राशियों की अन्तर्दशा होती है।

अन्य प्रकार से अन्तर्दशा का साधन –

दशा दशाहता कार्या दशभि र्भागमाहरेत्।
यल्लब्धं सो भवेन्मासस्रिं शन्निघ्नं दिनं भवेत्।।

जिस ग्रह की महादशा में जिस ग्रह की अन्तर्दशा अपेक्षित हो, उन दोनों के दशा वर्षों को गुणाकर दस का भाग देने से लब्धि मास होंगे। शेष को ३० से गुणा कर १० का भाग देने से लब्धि दिन होंगे। इसी प्रकार घटयादि फल का भी साधन करना चाहिए। प्रत्येक ग्रह में अन्तर्दशा का साधन करके रख दिया गया है, आप उसका आगे अवलोकन कर सकते है। उसी आधार आप गणित करके अन्तर्दशा साधन भी कर सकते है।

प्रत्यन्तर्दशा साधन –

जिसकी अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा निकालनी हो, उस अन्तर्दशा वर्ष को अपने अपने दशावर्ष से गुणा कर उसमें समस्त दशावर्ष योग से भाग देने से लब्ध ग्रहों की प्रत्यन्तर्दशा होती है। जैसा कि आचार्य पराशर जी ने भी कहा है –

मूल श्लोकः -

पृथक् स्व-स्व दशामानैर्हन्यादन्तर्दशामितिम्।

भजेत्सर्वदशायोगै: फलं प्रत्यन्तरं क्रमात्।।

उदाहरण के लिए –

जैसे सूर्य की विंशोत्तरी मान से सूर्य में सूर्य की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा निकालनी है। सूर्य का अन्तर्दशा वर्षादि ०।३।१८ है। इसको दिनात्मक १०८ दिन करके इस १०८ को सूर्य दशा वर्ष ६ से गुणा किया तो ६४८ हुआ। इसमें समस्त दशायोग १२० का भाग दिया तो ५ दिन मिला, शेष ४८ को ६० से गुणाकर १२० का भाग दिया तो २४ घटी,शेष शून्य हो गया। अत: सूर्य की प्रत्यन्तर्दशा दिनादि ५।२४।० हुआ। इसी प्रकार सूर्य की अन्तर्दशा १०८ दिन इसको चन्द्रदशा वर्ष १० से गुणा कर १२० का भाग देने पर लब्धि दिनादि ०।९।० यह सूर्य की अन्तर्दशा में चन्द्रमा की प्रत्यन्तर्दशा हुई। इस प्रकार १०८ × भौमवर्ष ७ ÷ १२० = ०।६।१८ सूर्यान्तर मंगल की प्रत्यन्तर दशा दिनादि हुई। एवं १०८ × १८ ÷ १२० = ०।१६।१२ सूर्यान्तर में राहु की प्रत्यन्तर दशा दिनादि हुई। इसी प्रकार अपनी-अपनी दशावर्ष संख्या से गुणा कर १२० का भाग देने पर सभी ग्रहों की प्रत्यन्तर्दशा दिनादि स्पष्ट होती है।

सूर्य की महादशा में सूर्य की अन्तर्दशा में सूर्यादि की प्रत्यन्तर्दशा बोधक चक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र
मास	०	०	०	०	०	०	०	०	०
दिन	५	९	६	१६	१४	१७	१५	६	१८
घटी	२४	०	१८	१२	२४	६	१८	१८	०

सूर्य की महादशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा में चन्द्रादि की प्रत्यन्तर्दशा बोधक चक्र

ग्रह	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य
मास	०	०	०	०	०	०	०	१	०
दिन	१५	१०	२७	२४	२८	२५	१०	०	९
घटी	०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०

सूर्य की महादशा में मंगल की अन्तर्दशा में मंगलादि की प्रत्यन्तर्दशा बोधक चक्र

ग्रह	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र
मास	०	०	०	०	०	०	०	०	०
दिन	७	१८	१६	१९	१७	७	२१	६	१०
घटी	२१	५४	४८	५७	५१	२१	०	१८	३०

सूर्य की महादशा में राहु की अन्तर्दशा में राह्वादि की प्रत्यन्तर्दशा बोधक चक्र

ग्रह	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल
मास	१	१	१	१	०	१	०	०	०
दिन	१८	१३	२१	१५	१८	२४	१६	२७	१८
घटी	३६	१२	१८	५४	५४	०	१२	०	५४

सूर्य की महादशा में गुरु की अन्तर्दशा में गुर्वादि की प्रत्यन्तर्दशा बोधक चक्र

ग्रह	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु
मास	१	१	१	०	१	०	०	०	१
दिन	८	१५	१०	१६	१८	१४	२४	१६	१३
घटी	२४	३६	४८	४८	०	२४	०	४८	१२

सूर्य की महादशा में शनि की अन्तर्दशा में शनि आदि की प्रत्यन्तर्दशा बोधक चक्र

ग्रह	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु
मास	१	१	०	१	०	०	०	१	१
दिन	२४	१८	१९	२७	१७	२८	१९	२१	१५
घटी	९	२७	५७	०	६	३०	५७	१८	३६

सूर्य की महादशा में बुध की अन्तर्दशा में बुधादि की प्रत्यन्तर्दशा बोधक चक्र

ग्रह	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि
मास	१	०	०	०	०	०	०	१	१
दिन	१३	१७	२१	१५	२५	१७	१५	१०	१८
घटी	२१	५१	०	१८	३०	५१	५४	४८	५७

सूर्य की महादशा में केतु की अन्तर्दशा में केतु आदि की प्रत्यन्तर्दशा बोधक चक्र

ग्रह	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध
मास	०	०	०	०	०	०	०	०	०
दिन	७	२१	६	१०	७	१८	१६	१९	१७
घटी	२१	०	१८	३०	२१	५४	४८	५७	५१

सूर्य की महादशा में शुक्र की अन्तर्दशा में शुक्र आदि की प्रत्यन्तर्दशा बोधक चक्र

ग्रह	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु
मास	२	०	१	०	१	१	१	१	०

दिन	०	१८	०	२१	२४	१८	२७	२१	२१
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०

बोध प्रश्न –

1.सम्पूर्ण दशा वर्ष का मान कितना होता है।

क. १०८ वर्ष ख.१२० वर्ष ग. ३६ वर्ष घ. कोई नहीं।

2. चन्द्रमा का विंशोत्तरी दशा वर्ष कितना है।

क.६ वर्ष ख. १८ वर्ष ग. २० वर्ष घ. १० वर्ष

3. सूर्य की दशा में सूर्य की अन्तर्दशा मान साधन का गणित है।

क. १०।१०/१२० ख. ६×६/१२० ग. २० × ६/१२० घ. ६ × १०/१२०

4. सूर्य की दशा में सूर्य की अन्तर्दशा मान होगा।

क. ०।३।१८ ख. ०।६।१२ ग. ०।१०।६ ०।५।१०

5. सूर्य की दशा में सूर्य की अन्तर्दशा में सूर्य का प्रत्यन्तर मान होता है।

क. ०।५।२४ ख. ०।३।१८ ग. ०।१।१२ घ. ०।८।६

6. सूर्य में बुध का अन्तर्दशा मान होगा -

क. ०।८।६ ख. ०।१०।६ ग.०।१।१२ घ.०।६।९

4.6 सारांश –

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया होगा कि जिस ग्रह की महादशा में अन्तर्दशा अवगत करनी हो, उसकी वर्ष संख्या को अलग-अलग ग्रहों की वर्षसंख्या से गुणा करके सभी ग्रहों की वर्षसंख्या के योग से भाग देने से लब्धि पृथक-पृथक् अन्तर्दशा वर्षादिमान होते हैं। इसी प्रकार अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर ज्ञात करना अभीष्ट हो तो अन्तर्दशा मान को प्रत्येक ग्रह के दशा वर्ष से गुणाकर सभी ग्रहों के दशावर्ष योग से भाग देने से लब्धि पृथक-पृथक प्रत्यन्तर्दशा होती है। इसी प्रकार आगे की इकाई में सूक्ष्मदशा एवं प्राणदशा का भी आनयन किया जायेगा।

4.7 पारिभाषिक शब्दावली

अन्तर्दशा – दशा के मध्य अन्तर्दशा होती है।

प्रत्यन्तर्दशा – अन्तर्दशा के मध्य प्रत्यन्तर्दशा होती है।

पृथक- पृथक - अलग-अलग

परस्पर – एक दूसरे का

4.8 बोधप्रश्न के उत्तर

1. ख
2. घ
3. ख
4. क
5. क
6. ख

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वृहत्पराशरहोराशास्त्र - आचार्य पराशर
2. जातकपारिजात – आचार्य वैद्यनाथ
3. वृहज्ज्योतिसार – चौखम्भा प्रकाशन
4. ज्योतिष सर्वस्व – सुरेश चन्द्र मिश्र
5. वृहज्जातक – आचार्य वराहमिहिर

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अन्तर्दशा एवं प्रत्यन्तर्दशा साधन से आप क्या समझते है।
2. अन्तर्दशा साधन विधि सोदाहरण लिखिये।
3. प्रत्यन्तर्दशा का साधन कीजिये।
4. अन्तर्दशा एवं प्रत्यन्तर्दशा का महत्व बतलाइये।
5. अन्तर्दशा क्रम, चरादि दशा, राशियों की अन्तर्दशा क्रम का लेखन कीजिये।

इकाई - 5 सूक्ष्म दशा एवं प्राण दशा

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 सूक्ष्म दशा एवं प्राण दशा परिचय
5.4 सूक्ष्म दशा एवं प्राण दशा साधन
5.5 सारांश
5.6 पारिभाषिक शब्दावली
5.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.9 सहायक पाठ्यसामग्री
5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई तृतीय सेमेस्टर (MAJY-602) के द्वितीय खण्ड की पाँचवीं व अन्तिम इकाई से सम्बन्धित है जिसका शीर्षक है – सूक्ष्म दशा एवं प्राण दशा। इससे पूर्व आपने विंशोत्तरी, अष्टोत्तरी, योगिनी दशा तथा अन्तर्दशा एवं प्रत्यन्तर्दशा का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में सूक्ष्म दशा एवं प्राण दशा साधन के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

दशाओं में अति सूक्ष्म काल ज्ञान के लिए सूक्ष्म दशा एवं प्राण दशा का विधान है। ऋषियों ने काल का निरन्तर अन्वेषण कर सूक्ष्मातिसूक्ष्म काल खण्ड का निर्धारण कर जातक के जीवन में होने वाली घटनाओं का ज्ञान दशाओं के माध्यम से कर लेत थे।

अत: आइए इस इकाई में हम लोग 'सूक्ष्म दशा एवं प्राण दशा साधन' के बारे में तथा उसकी गणितीय सिद्धान्तों को जानने का प्रयास करते है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- सूक्ष्म दशा एवं प्राण दशा दशा को परिभाषित कर सकेंगे।
- सूक्ष्म दशा एवं प्राण दशा की आयु दशा वर्ष से परिचित हो जायेंगे।
- सूक्ष्म दशा एवं प्राण दशा का साधन कर सकेंगे।
- सूक्ष्म दशा एवं प्राण दशा के महत्व को बता सकेंगे।

5.3 सूक्ष्म एवं प्राण दशा

दशाओं के क्रम में अन्तर और प्रत्यन्तर दशा के पश्चात् सूक्ष्म एवं प्राण दशा का स्थान आता है। आप सभी को यह ज्ञात होना चाहिए कि सूक्ष्म एवं प्राण दशा सूक्ष्मातिसूक्ष्म फलादेश साधन के आधार स्तम्भ है। ऋषियों ने निरन्तर घोर साधना कर इतना सूक्ष्म समय का आँकलन किया ताकि सूक्ष्म फलादेश करने में सहायता मिल सके।

सूक्ष्म से भी सूक्ष्म प्राण दशा होती है। अत: इसका गणितीय साधन एवं फलोदश आदि कर्तव्य दोनों ही सर्वथा कठिन है। आइए इस इकाई में आपके लिए क्रमश: सूक्ष्म एवं प्राण दशा का साधन जो ऋषियों द्वारा बतलाया गया है, क्रमश: उसका उल्लेख करते है। इनके आधार पर आप सूक्ष्म एवं प्राण दशा साधन करने में समर्थ हो जायेंगे।

5.4 सूक्ष्म एवं प्राण दशा साधन

सूक्ष्मान्तर्दशा साधन प्रकार –

गुण्या स्व स्वदशावर्षै: प्रत्यन्तरदशामिति:।
खार्कैर्भक्ता पृथग्लब्धि: सूक्ष्मान्तरदशा भवेत्।।

अर्थात् प्रत्यन्तर दशामान को अलग-अलग दशावर्ष से गुणा कर १२० का भाग देने पर अलग-अलग सूक्ष्मान्तर्दशा का मान प्राप्त होता है।

उदाहरण –

जैसे सूर्य की महादशा में सूर्य की ही अन्तर्दशा में सूर्य की प्रत्यन्तर्दशा ५।२४ दिनादि है, इसको ५ × ६० + २४ = ३२४ घटयात्मक हुआ, इसमें सूर्य दशा वर्ष ६ से गुणा किया तो १९४४ हुआ, इसमें १२० का भाग दिया तो १६।१२ घटयादि सूर्य दशा में सूर्यान्तर में सूर्य प्रत्यन्तर में सूर्य की सूक्ष्म दशा हुई। इसी प्रकार पूर्वोक्त सूर्य की प्रत्यन्तर्दशा ३२४ को चन्द्र दशावर्ष १० से गुणा कर १२० का भाग देने से २७।० घटयादि चन्द्र की सूक्ष्म दशा हुई। एवं प्रकारेण –

३२४ × ७/१२० = १८।५४ घटयादि

३२४ × १८/१२० = ४८।३६ घटयादि

३२४ × १६/१२० = ४३।१२ घटयादि

३२४ × १९/१२० = ५१।१८ घटयादि

३२४ × १७/१२० = ४५।५४ घटयादि

३२४ × ७/१२० = १८।५४ घटयादि

३२४ × २०/१२० = ५४।०० घटयादि

अत: सूर्यमहादशा में, सूर्यान्तर में, सूर्य प्रत्यन्तर में, सूर्य सूक्ष्म दशा चक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र
घटी	१६	२७	१८	४८	४३	५१	४५	१८	५४
पल	१२	०	५४	३६	१२	१८	५४	५४	०

प्राण दशा साधन प्रकार –

पृथक् खगदशावर्षैर्हन्यात् सूक्ष्मदशामितिम्।
खसूर्यैर्विभजेल्लब्धिर्ज्ञेया प्राणदशामितिः।।

अर्थात् सूक्ष्म दशामान को प्रत्येक ग्रहों के दशावर्षसंख्या से पृथक् पृथक गुणा कर गुणनफल में दशावर्ष योग १२० से भाग देने पर घटयादि प्राणदशा होती है।

उदाहरण –

जैसे सूर्य की सूक्ष्म दशा पर १६ घड़ी, १२ पल है, इसको १६ × ६० + १२ = ९७२ पल बनाने से ९७२ हुए इसको सूर्यवर्ष संख्या ६ से गुणा कर प्राप्त ५८३२ में १२० का भाग देने पर ० घटी, ४८ पल ३६ विपल हुआ, यही सूर्य की सूक्ष्म दशा में सूर्य की प्राणदशा हुई। इस प्रकार ९७२ पलात्मक सूर्य की सूक्ष्म दशा को प्रत्येक ग्रहों के दशा वर्ष से गुणाकर १२० का भाग देने से सभी ग्रहों के सूर्य की सूक्ष्म दशा में प्राणदशा हो जाती है।

घटी पल विपल

९७२ × १०/१२० = १।२१।० = सूर्य की सूक्ष्म दशा में चन्द्रमा की प्राणदशा

९७२ × ७/१२० = ०।५६।४२ = सूर्य की सूक्ष्म दशा में मंगल की प्राणदशा

९७२ × १८/१२० = २।२५।४८ = सूर्य की सूक्ष्म दशा में राहु की प्राणदशा

९७२ × १६/१२० = २।९।३६ = सूर्य की सूक्ष्म दशा में गुरु की प्राणदशा

९७२ × १९/१२० = २।३३।५४ = सूर्य की सूक्ष्म दशा में शनि की प्राणदशा

९७२ × १७/१२० = २।१७।४२ = सूर्य की सूक्ष्म दशा में बुध की प्राणदशा

९७२ × ७/१२० = ०।५६।४२ = सूर्य की सूक्ष्म दशा में केतु की प्राणदशा

९७२ × २०/१२० = २।४२।० = सूर्य की सूक्ष्म दशा में शुक्र की प्राणदशा

उक्त प्रकार सेस प्रत्येक ग्रह की सूक्ष्म दशा के द्वारा प्राणदशा का साधन करना चाहिए।

सूर्य की सूक्ष्म दशा में सूर्य की प्राणदशा सारणी –

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र
घटी	०	१	०	२	२	२	२	०	२
पल	४८	२१	५६	२५	९	३३	१७	५६	४२
विपल	३६	०	४२	४८	३६	५४	४२	४२	०

इसी प्रकार आप सूक्ष्म एवं प्राण दशा अन्य ग्रहों का भी साधन कर सकते हैं।

अब सूक्ष्म एवं प्राण दशा के अतिरिक्त कालचक्र दशा का भी साधन बतलाया गया है। यहाँ उसका भी उल्लेख किया जा रहा है।

कालचक्र दशा का आनयन –

कालचक्र दशा मूलतः नक्षत्र–प्रधान दशा है। चन्द्रमा ही नक्षत्र होता है। अतः जन्मकालिक चन्द्रमा का स्पष्ट राश्यादि भोग ही इस महादशा का मूल आधार है। इस दशा के आनयन विधि को हम चार मुख्य चरणों में बाँट सकते हैं–

1. चन्द्रमा के राश्यादि भोग से जन्मकालिक नक्षत्र का ज्ञान।
2. जन्मकालिक नक्षत्र के चरण और वर्तमान चरण के भुक्त कालादि का ज्ञान।
3. वर्तमान नक्षत्र–चरण के भुक्त कलादि से भुक्त दशा का ज्ञान।
4. दशा के भुक्त वर्षादि से भोग्य वर्षादि का ज्ञान।

दशानयन की इस समूची प्रक्रिया को एक उदाहरण द्वारा समझना सरल होगा। मान लीजिए किसी व्यक्ति का जन्म 29 नवम्बर 1985 को हुआ है। जन्मकालिक चन्द्रमा का स्पष्ट राश्यादि भोग 10 |0^0 |9′ |21′′ है।

चं. 10 |0 |9 |21 = 300^0 |9′21′′

(1) 1 नक्षत्र का मान 13^0 |20′ होता है तथा 3^0 |20′ का एक चरण होता है। नक्षत्रमान 13^0 |20′ से चन्द्रमा के अंशादि भोग में भाग दिया।

..... = 22.511688 लब्धि 22 गत नक्षत्र संख्या हैं। अर्थात् 22वाँ नक्षत्र श्रवण गत हो चुकने पर वर्तमान धनिष्ठा नक्षत्र के शेष 6^0, 8225 तुल्य भाग जन्म तक भुक्त हो चुका है।

(2) धनिष्ठा के गत अंशादि 6^0, 8225 में चरणमान 3^0 |20′ से भाग देने पर लब्धि 2 धनिष्ठा के गत चरण और 0^0 |1′ |21′′ तृतीय चरण का भुक्तांश होगा।

(3) इस धनिष्ठा नक्षत्र के तृतीय चरण के भुक्तांश को उसके सम्पूर्ण दशावर्ष 85 से गुणा कर चरणमान 3^0 |20′ से भाग देने पर–

धनिष्ठा के तृतीय चरण का भुक्तांश 0^0 |9′ |21′′

धनिष्ठा के तृतीय चरण की सम्पूर्ण दशा 85 वर्ष है।

अतः 0^0 |9′ |21′′ **X** 85 ÷ 3^0 |20′ वर्ष

= 3.97375 वर्ष।

= 3 वर्ष 11 माह 20.55 दिन।

= मिथुन की दशा के गत वर्षादि।

धनिष्ठा के तीसरे चरण में (यतः धनिष्ठा अपसव्य चक्र में नक्षत्रत्रय का दूसरा नक्षत्र है इसलिए) अपसव्य चक्र के सूत्रों में 7वें सूत्र के अनुसार दशाक्रम मिथुन से प्रारम्भ होगा जिसका दशा वर्ष 9 है।

अतः मिथुन की दशा में 3 वर्ष 11 माह 20 दिन भुक्त होने पर जातक का जन्म हुआ है। इसलिए मिथुन के भोग्य वर्षादि 9 वर्ष–3 |10 |16 वर्षादि

9 |00 |00

– 3 |11 |20

मिथुन का भोग्य काल = 5 |00 |10 वर्षादि

अथवा–

जन्मकालिक चन्द्रमा राश्यादि 10 |0 |9 |21

= 18009.35 कला

18009.35 ÷ 800 = $22\frac{409.35}{800}$

बाईसवाँ नक्षत्र श्रवण गत 23वें नक्षत्र धनिष्ठा के 409.35 कला गत होने पर जन्म हुआ।

409.35 ÷ 200 = $2\frac{9.35}{200}$ अर्थात् धनिष्ठा के दो चरण गत, तीसरे चरण के 9'.35 कला गत होने पर जन्म हुआ।

अतः जन्मकाल में मिथुन की 9 वर्षीय महादशा प्रभावी थी जिसका $\frac{9.35\times85}{200}$= 3 वर्ष 11 माह 20 दिन जन्म से पूर्व गत हो चुका था तथा 5 वर्ष और 20 दिन मिथुन की दशा का शेष था।

बोध प्रश्न –

1. सूर्यमहादशा में, सूर्यान्तर में, सूर्य प्रत्यन्तर में, सूर्य सूक्ष्म दशा का मान है।

   क. १६।१२ ख. २४।२४ ग.३।६ घ. १५।२६

2. सूर्यमहादशा में, सूर्यान्तर में, सूर्य प्रत्यन्तर में, राहु का सूक्ष्म दशा साधन मान है।

   क.३२४ × १८/१२० ख. ३२४ × १६/१२० ३२४ × ६/१२० घ. कोई नहीं

3. सूर्य की सूक्ष्म दशा में चन्द्रमा की प्राणदशा साधन का मान होगा।

   क. ९७२ × १०/१२० ख. ९७२ × ८/१२ ग. ९७२ × १६/१२० घ. ९७२ × ६/१२०

4. सूर्य की सूक्ष्म दशा में चन्द्रमा की प्राणदशा का मान होगा।

   क. १।२१।० ख. ५।१०।१५ ग. २।५।६ घ.२।५।८

5. काल चक्र दशा निम्न में कौन सा प्रधान दशा है।

क. चन्द्र प्रधान ख. नक्षत्र प्रधान ग. राशि प्रधान घ. कोई नहीं

5.6 सारांश –

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया होगा दशाओं के क्रम में अन्तर और प्रत्यन्तर दशा के पश्चात् सूक्ष्म एवं प्राण दशा का स्थान आता है। आप सभी को यह ज्ञात होना चाहिए कि सूक्ष्म एवं प्राण दशा सूक्ष्मातिसूक्ष्म फलादेश साधन के आधार स्तम्भ है। ऋषियों ने निरन्तर घोर साधना कर इतना सूक्ष्म समय का आँकलन किया ताकि सूक्ष्म फलादेश करने में सहायता मिल सके। सूक्ष्म से भी सूक्ष्म प्राण दशा होती है। अत: इसका गणितीय साधन एवं फलोदश आदि कर्तव्य दोनों ही सर्वथा कठिन है। प्रत्यन्तर दशामान को अलग-अलग दशावर्ष से गुणा कर १२० का भाग देने पर अलग-अलग सूक्ष्मान्तर्दशा का मान प्राप्त होता है। सूक्ष्म दशामान को प्रत्येक ग्रहों के दशावर्षसंख्या से पृथक् पृथक गुणा कर गुणनफल में दशावर्ष योग १२० से भाग देने पर घटयादि प्राणदशा होती है।

5.7 पारिभाषिक शब्दावली

सूक्ष्मदशा – प्रत्यन्तर दशा पश्चात् सूक्ष्म दशा होती है।

प्राणदशा – सूक्ष्म के बाद प्राण दशा जो अत्यन्त सूक्ष्म होती है।

कालचक्र दशा - नक्षत्र प्रधान दशा।

परस्पर – एक दूसरे का

5.8 बोधप्रश्न के उत्तर

1. क
2. क
3. क
4. क
5. ख

5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वृहत्पराशरहोराशास्त्र - आचार्य पराशर

2. जातकपारिजात – आचार्य वैद्यनाथ

3. वृहज्ज्योतिसार – चौखम्भा प्रकाशन

4. ज्योतिष सर्वस्व – सुरेश चन्द्र मिश्र

5. वृहज्जातक – आचार्य वराहमिहिर

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सूक्ष्म दशा साधन विधि का लेखन कीजिये।

2. प्राण दशा किसे कहते है।

3. सोदाहरण प्राण दशा का साधन कीजिये।

4. कालचक्र दशा का साधन कीजिये।

5. काल चक्र दशा से क्या तात्पर्य है।